TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182188

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 Ch49P Accession No. 111752

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

परिणीता

शरतचंद्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक
नागार्जुन

किताब महल
इलाहाबाद

मूल्य ।।।)

इस अनुवाद के सब अधिकार प्रकाशक के हैं।

CHECKED 1950
By SL. & L.

CHECKED 1950

Checked 1969

मुद्रक—बी० एल० वारश्नी, वारश्नी प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।
प्रकाशक—किताब महल, ५६-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद।

पारिणीता

प्रथम परिच्छेद

जब शक्ति लभी तो लक्ष्मण की मुखमुद्रा अवश्य विकृत हो गई थी किन्तु उस दिन गुरुचरण की मुखमुद्रा उससे भी अधिक विकृत हो गई—जब कि सुबह-सुबह उन्हें अपनी पाँचवीं लड़की के पैदा होने का समाचार प्राप्त हुआ।

गुरुचरण किसी बैंक में क्लर्क हैं—साठ रुपये मासिक पाते हैं। वस्तुतः भाड़े की गाड़ी का घोड़ा जैसे सड़ा-सूखा दिखाई देता है वैसे ही उनके चेहरे पर एक प्रकार की उदासी हमेशा छाई रहती है। फिर भी आज, इस भयंकर शुभ सम्वाद से उनके हाथ का हुक्का हाथ में ही रह गया, वह उस पुरानी तक़िया पर ज़रा और ज़ोर देकर बैठे जो उनके पिता के ज़माने की चीज़ है। मालूम पड़ता था, दीर्घ निःश्वास लेने का भी बल उनमें शेष नहीं रह गया है।

उक्त शुभ सम्वाद लाने वाली थी उनकी तीसरी लड़की आन्नाकाली। उम्र क़रीब दश साल की होगी। वह बोली—'बाबा, चलो न, देखना।'

लड़की के चेहरे की ओर देखते हुए गुरुचरण बोले—'माँ,* एक गिलास पानी तो लाओ, ज़रा पी लूँ।'

लड़की पानी लाने गई। उसके बाद गुरुचरण की आँखों के सामने नाचने लगा सूतिकागृह और वहाँ का तरह-तरह का खर्च। उत्सव और मेले के दिनों में

---

*बंगाल में लड़की, पतोहू, भतीजी, पोती आदि को माँ कहकर सम्बोधन करने का आम रिवाज़ है।

स्टेशन पर जब गाड़ी आती है तो तीसरे दर्ज़े के मुसाफ़िर अपनी-अपनी गठरी-मोटरी लिए पागलों की भाँति जिस प्रकार लोगों को कुचलते, धक्का-मुक्की करते उस पर चढ़ते हैं उसी प्रकार हू हू करके दुश्चिन्ताएँ गुरुचरण के मस्तिष्क में घुसने लगीं। याद आया, गत वर्ष दूसरी लड़की के व्याह के लिए बहूबाज़ार का यह दोतल्ला मकान उन्हें बंधक रखना पड़ा—सो भी छः महीने का सूद अभी तक महाजन को दे नहीं पाये हैं! दुर्गापूजा आने में मास भर ही रह गया है—मझली लड़की के यहाँ सौगात-ऊगात कुछ भेजना ही पड़ेगा। दफ़्तर में कल रात आठ बजे तक ज़मा-खर्च का लेखा-जोखा ठीक ठीक मिल नहीं रहा था, आज बारह बजे तक हिसाब-किताब साफ करके विलायत भेजना ही होगा। कल बड़े साहब ने आदेश दिया है, मैले-कुचैले कपड़े पहनकर कोई भी दफ़्तर के अन्दर दाखिल नहीं हो सकता—फाइन (दंड) होगा और इधर पिछले हफ़्ते से धोबी लापता है—दुनिया भर का आधा कपड़ा लेकर, न मालूम, वह कहाँ गायब हो गया। गुरुचरण अब तकिया के भी सहारे बैठे नहीं रह पाये, हाथ में हुक्का लेकर लेट गये। मन ही मन उन्होंने कहा—'हे भगवान्, इस विराट नगर (कलकत्ता) में प्रतिदिन कितने ही आदमी गाड़ी के नीचे आ जाते हैं, उनकी अकाल मृत्यु होती है, क्या वे तुम्हारी निगाह में मुझ से भी ज्यादा अपराधी थे? दयामय, तुम्हारी कृपा से यदि इस छाती पर से एक भारी मोटर गुज़र जाय!'

आन्नाकाली पानी लाकर बोली—'बाबा, उठो, पानी लाई हूँ।'

गुरुचरण उठे और गिलास का सारा पानी एक साँस में पी गये। लड़की-को कहा—'आः, जा गिलास लिये जा।'

लड़की चली गई। गुरुचरण फिर लेट गये।

ललिता अन्दर आकर बोली—'मामा, चाय लाई हूँ, उठो।'

चाय का नाम सुनकर गुरुचरण एक बार और उठ बैठे। ललिता को देख कर मानो उनकी आधी जलन शान्त हो गई। स्निग्ध स्वर में उन्होंने कहा—'सारी रात जगी है माँ, आ, मेरे पास आकर ज़रा बैठ ले।'

ललिता मुसकुराती हुई नज़दीक आई और बैठ गई, फिर उसने कहा—'मैं रात को बेशी (ज्यादा) नहीं जागती मामा।'

इस जीर्णशीर्ण अकालवृद्ध भारग्रस्त मामा के हृदय की गूढ़-गम्भीर व्यथा को ललिता ही सबसे अधिक अनुभव करती थी।

'ठीक है'—गुरुचरण ने कहा—'आ, मेरे पास आ।'

ललिता और नज़दीक खिसक आई। गुरुचरण ने उसके सिर पर हाथ फेरा और वह सहसा बोलने लगे—'अपनी इस माँ को यदि राजा के घर दे पाता तभी समझता कि एक काम किया।'

ललिता शिर झुकाकर प्याला में चाय डालने लगी। गुरुचरण ने फिर कहा—'गरीब मामा के घर आकर तुम्हें दिन रात परिश्रम करना पड़ता है, न?'

शिर झुकाये ही ललिता ने जवाब दिया—'दिन रात क्या मामा, घर में सभी काम करते हैं, मैं भी करती हूँ।'

इस बार गुरुचरण हँस पड़े। चाय पीते पीते बोले—'हाँ, ललिता, आज रसोई-वसोई का क्या होगा?'

'क्यों, मामा, मैं जो हूँ'—ललिता ने शिर उठाया।

गुरुचरण को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—'तू क्या रसोई करेगी, तुझे आता है?'

'जानती हूँ मामा, मामी के पास मैंने सब सीख लिया है।'

चाय की कटोरी नीचे रखकर गुरुचरण बोले—'सच?'

'सच! मामी बतला देती थीं, कितने ही दिन मैं ही तो पकाती थी'—ललिता ने फिर शिर नीचे कर लिया। उसके आनत शिर पर गुरुचरण ने अपना दाहिना हाथ रखा और मूक आशीर्वाद दिया। उनकी एक बड़ी भारी चिन्ता दूर हो गई।

यह मकान गली के किनारे ही पड़ता था। चाय पीते पीते जंगला के बाहर नज़र पड़ी तो गुरुचरण ने पुकारा—'कौन, शेखर तो नहीं? सुनो, सुनो।'

अच्छी डील-डौल का एक सुन्दर तरुण भीतर आया।

गुरुचरण ने कहा—'बैठो, आज प्रातःकाल अपनी छोटी माँ का कांड* सुना है ?'

'कांड क्या, लड़की हुई है, यही न ?'— शेखर ने मुसकुराते हुए कहा।

गुरुचरण ने लम्बी साँस छोड़कर कहा—'भाई, तुमने तो वही कहा लेकिन वह है क्या सो मैं ही जानता हूँ !'

शेखर ने कहा—'उस तरह की बात मत बोलें काका, छोटी माँ सुनेंगी तो उन्हें बहुत दुख होगा। और, भगवान ने जिसको भेजा है, आदर-आह्लादपूर्वक उसको अपना लेने में ही कल्याण है।'

गुरुचरण कुछ देर चुप रहे फिर बोले—'आदर-आह्लाद करना चाहिए, सो मैं भी भली भाँति जानता हूँ ! किन्तु, बाबा, भगवान भी तो कुछ सोचते नहीं। मैं गरीब हूँ, मेरे घर में इतने क्यों ? यह मकान तक तुम्हारे बाप के पास गिरवी रखा हुआ है, इसका भी मुझे खेद नहीं। लेकिन, यह सामने-सामने देखते हो ? यह जो हमारी ललिता, मातृ-पितृवंचिता, सोने की पुतली—केवल राजा के ही घर में सजे तो सजे ! कैसे इसको मैं अपने जीते जी जिस-किसी के पल्ले कर दूँ ? बोलो तो ? राजा के मुकुट में जो कोहिनूर जगमगा रहा है, वैसे कोहिनूरों की ढेर से तौलने पर भी हमारी इस ललिता का मूल्य नहीं लगाया जा सकता ? किन्तु यह सब कौन समझेगा ? रुपया-पैसा के अभाव में ऐसा रत्न भी हमें कहीं न कहीं फेंक देना होगा ! कहो तो तब कैसा शूल हृदय में चुभेगा ? तेरह साल की इसकी उमर हुई किन्तु हाथ में यहाँ तेरह पैसे भी नहीं कि कहीं सम्बन्ध की बात तक ठीक-ठाक करूँ !'

गुरुचरण की दोनों आँखें डबडबा आईं। शेखर चुप था। गुरुचरण ने फिर कहा—'शेखरनाथ, देखो तो बाबा, यदि अपने बन्धु-बान्धवों और इष्ट-मित्रों में कहीं इस लड़की का ठौर ठिकाना कर सको। आजकल बहुतेरे लड़के, सुनते हैं, रुपया-पैसा की ओर ध्यान नहीं देते, लड़की देखकर ही वे पसंद करते हैं। यदि वैसा ही संयोग से कोई मिल जाय, शेखर, तो मैं तुम्हें अभी से

---

*बड़ी से बड़ी घटना, अद्भुत प्रसंग।

आशीर्वाद दे रखता हूँ—तुम राजा होगे। और अधिक क्या कहूँ भाई, इस मुहल्ले में तुम्हीं लोगों के सहारे मैं जी रहा हूँ, तुम्हारे पिता मुझे अपना छोटा भाई ही समझते हैं।'

शेखर ने शिर झुकाकर कहा—'अच्छा, देखेंगे।'

गुरुचरण ने कहा—'भूलना नहीं भाई, देखना। ललिता तो आठ बरस की उमर से लेकर आजतक तुम्हारे पास ही रही है, तुम्हीं से उसने लिखना-पढ़ना सीखा है। देख ही रहे हो, कैसी बुद्धिमती है! कितना मधुर और शान्त है उसका स्वभाव! एक नन्हीं लड़की, आज से वही हमारे लिए खाना-वाना बनायेगी, देगी-लेगी, सारा भार अभी उसी के शिर पर।'

ललिता ने आँख ज़रा ऊपर उठाई फिर उसे नीचे कर लिया। उसके होठों की दोनों छोर थोड़ीसी फैल गई। गुरुचरण एक बार निःश्वास लेकर और बोले—'उसका बाप ही क्या कुछ कम रोज़गार कर गया है? किन्तु सब का सब ऐसे दान कर दिया कि एकमात्र लड़की—इस ललिता के लिए भी कुछ छोड़ नहीं सका!'

शेखर चुप था। गुरुचरण अपने आप ही फिर बोल उठे—'और कुछ रख नहीं गया, यही कैसे कहूँ? उसने लोगों का दुःख जो निवारण किया उसी का फल इस लड़की को दे गया है, नहीं तो इतनी सी छोटी उम्र में लड़की ऐसी अन्नपूर्णा भला हो पाती! तुम्हीं बोलो शेखर, मैं ठीक कहता हूँ कि नहीं?'

शेखर हँसने लगा, जवाब नहीं दिया।

वह उठने ही लगा था कि गुरुचरण पूछ बैठे—'इतने सबेरे जा कहाँ रहे हो?'

'बैरिस्टर के यहाँ'—'शेखर ने कहा—एक केस है'। उठकर वह खड़ा ही हुआ था कि गुरुचरण ने एकबार और याद दिलाते हुए कहा—'बात ज़रा ध्यान में रखना भैया! वह तनिक साँवली है सही लेकिन ऐसा चेहरा-मुहरा, ऐसी आँख, नाक, ऐसी हँसी, इतनी दया-माया सारा संसार छान डालने पर भी कोई कहीं पा नहीं सकेगा।'

शेखर शिर झुकाकर मुसकुराता हुआ बाहर चला गया। इस लड़के की उम्र होगी पचीस-छब्बीस के लगभग। एम० ए० पास करके कहीं पढ़ाता था, गत वर्ष एटर्नी हुआ है। पिता नवीन राय गुड़ के धन्धे में लखपती हो गये। कुछ ही साल पहले कारोबार समेट कर घर बैठ गये हैं, अब तिजारती कर रहे थे। बड़ा लड़का अविनाश वकील था, छोटा यही शेखर था। उनका बड़ासा तेतल्ला मकान मुहल्ले के शिर की भाँति आसपास के सभी मकानों से ऊँचा उठा था और उसके ही एक खुली छत के साथ गुरुचरण के मकान की छत मिली हुई थी— इसी लिए दोनों परिवार में अत्यन्त आत्मीयता हो गई थी। दोनों घरकी स्त्रियाँ उसी रास्ते से मिलती-जुलती रहतीं थीं।

द्वितीय परिच्छेद

बहुत दिनों से शेखर के ब्याह की बात चल रही थी—श्यामबाजार के एक बड़े घराने में। उस दिन वे लोग वर देखने आये तो आगामी माघ की किसी तिथि में विवाह का शुभ मुहूर्त स्थिर कर लेने का उनका मन हुआ। किन्तु यह बात शेखर की माँ को पसन्द नहीं आई। नौकरानी से उन्होंने कहला भेजा—'लड़का जाकर स्वयं देख-सुन आयगा तभी इस सम्बन्ध में कोई बात मैं निश्चय कर सकूंगी।'

नवीन राय की निगाह थी सिर्फ रुपयों पर, वह पत्नी की इस ऊटपटाँग बात से नाराज़ होकर बोलने लगे—'अब और क्या निश्चय करना बाकी रह गया? लड़की तो देखी ही हुई है। बातचीत पक्की हो ले, बाद में आशीर्वाद (लग्न या तिलक चढ़ाने) के दिन भली भाँति देखेगा ही।'

तथापि गृहस्वामिनी सहमत न हुईं, उन्होंने कोई निर्णयात्मक उत्तर देने नहीं दिया। नवीन राय ने उस दिन क्षोभ के कारण बहुत देर तक भोजन नहीं किया। दुपहर में, खा लेने के बाद, जो उनका थोड़ा सा सो लेने का अभ्यास था सो भी आज अन्दर नहीं, बाहर सोये।'

शेखरनाथ कुछ शौकीन तबियत का आदमी है। मकान के तेतल्ला पर उसका कमरा है—खूब सुसज्जित। पांच छः दिन बाद वह एक दिन उसी कमरे में एक बड़े आइना के सम्मुख खड़ा था। आज वह लड़की देखने जायगा, उसी की तैयारी थी। ललिता अन्दर आई। क्षणभर चुपचाप वह देखती रही, फिर पूछ बैठी—'बहू को देखने जाना है? है न?'

'यही तो! भली आई'—शेखर ने ललिता की तरफ अपनी नज़र फेरी—'संवार दो, भली भाँति देखूं लड़की मुझे कैसा पसन्द करती है!'

ललिता हंसने लगी। हँसते हँसते ही उसने कहा—'अभी तो समय नहीं है मेरे पास, शेखर, मैं रुपया लेने आई हूँ।' फिर तकिया के नीचे से उसने चाबियों

का गुच्छा बाहर किया और दराज़ खोलकर उसमें से कुछ रुपये निकाले, आँचल की खूंट में उन्हें बाँध लिया। मानो मन ही मन उसने अपने से कहा—'जभी जरूरत पड़ती है, रुपया तो मैं यहां से ले लिया करती हूँ किन्तु यह सब अदा होगा किस प्रकार ?'

शेखर कंघी कर रहा था, बड़े बड़े बालों को ऊपर की तरफ करते करते एकाएक वह ललिता की ओर मुँह करके कहने लगा—'अदा होगा भी !'

ललिता की समझ में कुछ नहीं आया। वह टुकुर टुकुर ताकती रही।

'देख जो रही है, समझी नहीं ?'

ललिता ने माथा हिला दिया—'नहीं।'

'ज़रा और बड़ी हो जाओ, फिर समझ में आयगा—जूता पहनकर शेखर बाहर चला गया।'

रात को शेखर चुपचाप एक कोच पर लेटा पड़ा था, माँ अन्दर आईं। वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। माँ एक चौकी पर बैठ गईं। पूछा—'देख आया, कैसी है लड़की ?'

शेखर ने माँ की तरफ देखा और हँसते हुए कहा—'ठीक है।'

शेखर की माँ का नाम है भुवनेश्वरी—उम्र लगभग पचास के क़रीब होगी किन्तु इतना सुन्दर है उनके शरीर का गढ़न कि पैंतीस-छत्तीस से अधिक अवस्था की कोई उन्हें कह नहीं सकता। और इस सुन्दर आवरण के अन्दर से जो मातृ हृदय झांक रहा था वह तो और भी नवीन, और भी कोमल, लगता था। वह देहात की थीं; देहात में जन्म लेकर देहात में ही बड़ी हुईं, लेकिन शहर में वह 'अपटु' या 'गँवारिन' मालूम पड़ती हों सो नहीं। नागरिक जीवन की चंचल सजीवता और आचार-व्यवहार जिस प्रकार उन्होंने स्वच्छंद रूप से अपना लिया था उसी प्रकार अपनी जन्मभूमि की सरलता और माधुर्य को भी साथ लिये चल रही थीं। अपनी इस माँ पर शेखर को कितना अभिमान था, यह भुवनेश्वरी भी नहीं जानती थीं। भगवान ने शेखर को बहुत कुछ दिया था—अनुपम स्वास्थ्य, सौंदर्य, वैभव, बुद्धि—किन्तु वह अपने को ऐसी माँ का औरस

पुत्र होने के कारण ही धन्य धन्य समझता था; इसी एक बात को वह अपने लिए भगवान की सबसे बड़ी देन समझता था।

माँ ने कहा—'ठीक कहकर चुप क्यों हो गया रे?'

शेखर फिर मुसकुरा पड़ा, बोला—'जो पूछा, उसका जवाब तो तुम्हें मिल ही गया।'

'हाँ! मिल गया जवाब! रंग कैसा होगा? किसकी जैसी होगी? हमारी ललिता की तरह होगी?'—माँ बोलीं।

शेखर ने शिर उठाकर कहा—'ललिता तो काली है माँ, उसका रंग कुछ साफ है।'

'मुँह, आँख, नाक, कान कैसे हैं?'—माँ ने शेखर की ओर देखा।

'ठीक ही है सब।'

'तो गृहपति से कहूँ?'

इस बार शेखर चुप्पी मार गया।

माँ ने छनभर लड़के की ओर देखा, फिर जिज्ञासा की—'हाँ रे, लड़की कुछ पढ़ी-लिखी भी है?'

'यह बात तो मैंने पूछी नहीं'—शेखर ने कहा।

अत्यन्त विस्मित होकर माँ शेखर की ओर देखने लगीं, बोलीं—'सब हुआ और यह नहीं पूछा! आज-कल सबसे अधिक जिसकी आवश्यकता होती है, बेटा, तुमने यही नहीं पूछा!!'

शेखर ने कहा—'ना माँ, उस बात का तो मुझे ख्याल ही नहीं था।'

भुवनेश्वरी को यह व्याख्यान सुनकर और भी आश्चर्य हुआ, कुछ देर वह बेटे के मुंह की ओर देखती रहीं, फिर मुसकुराकर बोलीं—'तब तू वहाँ शादी नही करेगा, है न?'

शेखर जाने क्या कुछ कहने जा रहा था लेकिन इसी समय ललिता कमरे के अन्दर आ गई और उसे देखकर वह चुप रहा। ललिता धीरे धीरे भुवनेश्वरी

के पास आकर खड़ी हो गई। उन्होंने अपने बाएं हाथ से पकड़कर ललिता को सामने कर लिया, कहा—क्या है माँ ?'

'कुछ नहीं माँ !'—ललिता ने धीमे स्वर में कहा।

ललिता पहले भुवनेश्वरी को मौसी-माँ कहा करती, किन्तु उन्होंने पीछे मना कर दिया—'तुम्हारी मैं मौसी तो हूँ नहीं लली, माँ हूँ'। उस दिन से ललिता उन्हें माँ कहकर ही बुलाती। भुवनेश्वरी ने उसे ज़रा और नज़दीक, छाती के पास, खींच कर कहा - 'कुछ नहीं ! तो, मालूम पड़ता है मुझे एकबार देखने आई है ?'

ललिता चुप थी।

'देखने आई है—रसोई कब करेगी ?'—शेखर ने कहा।

माँ ने पूछा—'रसोई यह क्यों करेगी ?'

शेखर ने विस्मय की मुद्रा में जिज्ञासा की—'कौन और है उन लोगों को रसोई करके परोस देनेवाली ? इसके मामा ने भी तो उस दिन कहा था, खाना-वाना ललिता ही अब बनाएगी'।

माँ हँस पड़ीं—'इसके मामा का क्या, कुछ न कुछ उन्हें बोल देना चाहिए ही ! अभी यह क्वाँरी है, इसके हाथ का पका खाना कैसे वह खा लेंगे ? अपनी महराजिन (पाचिका ब्राह्मणी) को मैंने भेज दिया है, वह खाना पका देगी; दुपहर का खाना आज-कल मैं उन्हीं लोगों के यहाँ खाया करती हूँ।'

शेखर समझ गया—माँ ने इस संकट-ग्रस्त परिवार का अधिकांश बोझ अपने ऊपर ले लिया है। इससे उसे एक प्रकार की आन्तरिक परितृप्ति हुई।

कुछ-एक मास के बाद की बात है। शाम हो चुकी थी। शेखर अपने कमरे में कोच पर लेटे लेटे एक अंग्रेज़ी उपन्यास पढ़ रहा था। उसका मन उपन्यास के कथा-वस्तु में डूबा हुआ था। ठीक इसी समय ललिता अन्दर आई, सिरहानी के नीचे से चाबियों का गुच्छा निकालकर दराज़ खोलने लगी। शेखर किताब पर से नज़र हटाये बिना ही बोला—'क्या है ?'

'रुपये लेती हूँ'—ललिता ने कहा।

'हूँ !'—शेखर फिर पढ़ने लगा। ललिता ने आँचर के पल्ले में रुपये बाँध लिये और जाने को प्रस्तुत हुई। आज वह सज-धजकर आई थी, उसकी इच्छा थी कि शेखर इस सजावट को देखे। वह बोली—'दश रुपये लिये हैं, शेखर भैया !'

शेखर ने कहा—'अच्छा।' लेकिन नज़र उठाकर ललिता को देखा नहीं। वह इधर से उधर और उधर से इधर, कमरे के अन्दर ही, निरुद्देश्य-सी या बाध्य-सी घूमने-फिरने लगी—यों ही झूठ-मूठ की देर करने लगी लेकिन अपने प्रयत्न में अंत तक असफल रही। शेखर ने उसकी ओर नहीं देखा और वह हार-कर बाहर चली गई। पर चले जाने से तो नहीं बनेगा, फिर उसे उल्टे पैर लौट आना पड़ा और कमरे के द्वार के पास खड़ा होना पड़ा। आज वे सब थिएटर देखने जाएंगे।

शेखर की आज्ञा के बिना वह जो कहीं जा नहीं सकती, यह उसे मालूम था। यह बात किसी ने कभी उसे कही नहीं थी। इस सम्बन्ध में 'क्यों, क्या, कैसे'—आदि संदेहात्मक जिज्ञासा भी कभी उसको नहीं हुई। परन्तु जीवमात्र में जो एक स्वाभाविक-सहज चेतना विद्यमान है उसी चेतना ने ललिता को यह सब सिखा दिया था। औरों की जो इच्छा हो वे वैसा कर सकते हैं, जहाँ जी में आवे जा सकते हैं; लेकिन वह वैसा नहीं कर सकती। वह यों भी स्वतंत्र नहीं है और सिर्फ़ मामा-मामी का हुकुम उसके लिए काफ़ी नहीं है। द्वार की आड़ से, धीमी आवाज़ में, उसने कहा—'हम थिएटर जो देखने जा रही हैं।'

उसकी वह धीमी आवाज़ शेखर के कानों तक नहीं पहुँची, फिर जवाब कैसे मिलता !

ललिता तब ज़रा और ज़ोर से बोली—'वे सब मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं।'

इस बार शेखर ने सुना। उसने किताब एक तरफ़ रख दी और पूछा—'क्या हुआ है ?'

ललिता ने तनिक रोषभरे स्वर में कहा—'इतनी देर बाद कान में गई। हम लोग थिएटर देखने जा रहे हैं।'

शेखर ने पूछा—'हम ? कौन कौन ?'

'मैं, आन्नाकाली, चारुवाला और उसका मामा।'

'मामा कौन ?'

ललिता ने कहा—'गिरीन्द्र बाबू है उनका नाम। पाँच-छः दिन हुए, अपने घर—मुंगेर—से आये हैं। यहाँ बी० ए० की तैयारी करेंगे। आदमी बड़े सज्जन हैं।'

'—वाह ! नाम, गाम और पेशा, सभी कुछ मालूम कर लिया गया है। इसको कहते हैं बातचीत करने की कला ! तभी तो, चार-पाँच दिनों से तू गूलर का फूल हो गई है ! ताश की पत्तियाँ पीटती है न खूब चारुवाला के मामा के पास ?'

शेखर का रंग-ढंग देखकर ललिता डर गई। उसने सपने में नहीं सोचा था कि इस तरह की भी बात उठ सकती है। उसका चेहरा उतर गया—वह ज्यों की त्यों खड़ी रह गई।

शेखर ने फिर पूछा—'ताश ही चलता था कि और कोई खेल ?'

ललिता का गला सूख रहा था, उसने कहा—'चारु ने कहा था।'

'चारु ने कहा था ? क्या कहा था ?'—शेखर ने ललिता की ओर देखा—'एकदम तैयार होकर आई है, अच्छा जा।'

ललिता चुपचाप खड़ी रही, जाने का सामर्थ्य उसमें अब था कहाँ !

पड़ोस के घर की चारुवाला उसकी हमजोली थी, वे लोग ब्रह्मसमाजी थे। इस नवागतुक गिरीन्द्र को छोड़कर शेखर उस परिवार के एक एक प्राणी को जानता था। पाँच-सात साल पहले, कभी कुछ दिनों के लिए गिरीन्द्र इधर आया था। इतने दिन वह बाँकीपुर (पटना) में पढ़ता था, कलकत्ता आने की ज़रूरत नहीं पड़ी ; इसी से शेखर के लिए वह अपरिचित था। ललिता अभी खड़ी है—शेखर ने देखा।

'क्यों झूठ-मूठ खड़ी है, जाती क्यों नहीं ?'—वह फिर उपन्यास पढ़ने लगा।

कुछ देर और चुपचाप खड़ी रहने के बाद ललिता ने बहुत धीमी आवाज़ में फिर पूछा—'जाऊँ ?'

'मैं तो कब से न कह रहा हूँ जाने को।'

शेखर का रुख देखकर थिएटर जाने का उत्साह उसका मन्द पड़ गया। लेकिन यह भी कैसे होगा कि वह नहीं जायगी। तै यह हुआ था कि आधा खर्च ललिता देगी और आधा चारु का मामा।

चारु के यहाँ सभी उत्सुकतापूर्वक ललिता का इन्तज़ार कर रहे थे, देर जितनी ही हो रही थी उतनी ही उन लोगों की अधीरता बढ़ती जाती थी—वह खुद भी यह भली भाँति महसूस कर रही थी लेकिन वहाँ उपाय भी तो और कोई नहीं था। बिना शेखर की अनुमति के वह जाती, इतना साहस उसमें था नहीं। छनभर और चुप रहकर बोली—'सिर्फ़ आज भर के लिए आज्ञा चाहती हूँ, कहो तो जाऊँ।'

शेखर ने किताब एक तरफ पटक दी और उठ बैठा—'मुझे तंग मत करो ललिता, जाना हो जाओ। भला-बुरा समझकर चलने लायक उमर तुम्हारी अब हो गई है।'

ललिता चौंक गई। शेखर के मुंह से कड़ी बातें सुनने का उसे अभ्यास था सही, पर इधर दो-तीन साल से उसने इस तरह की बात कभी नहीं सुनी थी। उधर वे इंतज़ार कर रहे होंगे, इधर यह भी कपड़े पहनकर तैयार थी। रुपये लाने गई तो शिर पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा। अब जाकर उनको भला क्या कहेगी ?

चाहे कहीं भी हो, जाने-आने की ललिता को पूरी स्वाधीनता थी। शेखर ने कभी उसकी स्वाधीनता को नापसद नहीं किया था और इसी भरोसे वह आज कपड़े पहन कर तैयार होकर ही आ गई थी। अभी उसे अपनी स्वाधीनता पर पड़ने वाले अंकुश का उतना ख्याल नहीं हो रहा था, उस बेचारी को ख्याल हो रहा था इस घटना के मूल कारण का—कितनी शर्म की बात थी! तेरह वर्ष की इस उमर में, पहली दफे, यह मालूम करके उसका अंतर व्याकुल हो उठा; भीतर ही भीतर मानो वह निर्जीव हो गई! उच्छ्वसित स्वामि-

मान के कारण उसकी आँखों में आँसू भर आये और वहाँ कुछ देर तक वह और खड़ी रही, फिर आँचल से आँख पोछ्ती हुई चली गई। अपने मामा के घर जाकर उसने आन्नाकाली को बुलवा लिया और उसके हाथ में दशों रुपये देते हुए कहा—'तुम लोग जाओ काली, मेरी तबियत खराब हो गई है। चारु को बोलना, मैं आज नहीं जा सकूँगी।'

काली ने पूछा—'क्या मालूम होता है सेज्दि* ?'

'माथा दर्द करता है, मतली आ रही है—तबियत बहुत भारी लगती है'—इससे ज्यादा ललिता कुछ नहीं बोली। बिस्तरे पर करवट लेट गई। फिर चारु आई। उसने बहुत ज़ोर लगाया, मामी से सिफ़ारिश करवाई। लेकिन किसी तरह भी ललिता जाने को तैयार न हुई! आन्नाकाली के हाथ दस रुपये आ गये थे, वह जाने के लिए छटपटा रही थी। पीछे काली ने सोचा—कदाचित् सेज्दि को मनाने में ही समय खतम न हो जाय! चारु को एक ओर ले जाकर रुपये दिखलाते हुए उसने कहा—'ललिता बहन की तबियत खराब हो गई है तो क्यों उसे परेशान करती हो? चलो हम लोग चले चलें।' आन्नाकाली उमर में छोटी लेकिन अक़्ल में किसी से भी खोटी नहीं है, यह तथ्य चारुवाला को मालूम हो गया। वह सहमत होकर चली गई।

---

*सेज्दि—तीसरी सन्तान को बंगाल में सेजो या सेज् कहते हैं। यहाँ भी तीसरी बहन से मतलब है। सेज्दा—तीसरा भाई।

तृतीय परिच्छेद

चारुबाला की माँ का नाम था मनोरमा। उनके लिए संसार में तास से बढ़कर प्रियवस्तु और कुछ नहीं थी। लेकिन खेलने की जैसी उनकी झोंक थी वैसी चतुरता खेल में नहीं थी। ललिता के आ जाने से उनकी यह कमी पूरी हो जाती थी। वह बहुत ही अच्छी खेलती थी। मनोरमा का ममेरा भाई—गिरींद्र जब से आया था तभी से दुपहर का सारा समय उनके यहाँ तास की पत्तियों से मुखरित रहता। बीच बीच में विजय और पराजय की उल्लास और चिढ़ से भरी आवाज़ें भी सुनाई पड़तीं। गिरीन्द्र ठहरा मर्द, पक्का खेलाड़ी, उसके समक्ष खेल में मनोरमा बिना ललिता के छनभर भी टिक नहीं सकती थी।

जिस रोज़ वे लोग थिएटर देखने गये थे उसके दूसरे दिन ललिता खेलने नहीं आई। मनोरमा ने नौकरानी को भेजा। ललिता उस वक्त एक अंग्रेज़ी किताब में से कुछ बंगला अनुवाद कर रही थी, नौकरानी को उसने टरका दिया—नहीं गई। चारु उसकी समवयस्का सखी थी, वह भी आई और हार कर चली गई। आखिर मनोरमा खुद आईं और ललिता की कापी-किताब आदि को एक ओर उपेक्षापूर्वक हटा दिया—कहने लगीं, 'उठेगी कि नहीं? पढ़-लिखकर जज बनना है? मैं वैसा नहीं होने दूँगी। तास तो तुझे खेलना ही पड़ेगा। चल पगली कहीं की?'

ललिता धर्म-संकट में पड़ गई। उसका मुँह उदास हो गया। उसने समझाया—आज वह किसी तरह भी जा नहीं सकेगी, कल जाएगी। मनोरमा ने एक भी नहीं सुनी, अंत में मामी को सूचित करके उसे उठा ले गईं। मतलब यह कि आज भी ललिता को गिरींद्र की प्रतियोगिता में सामने आना पड़ा। लेकिन खेल जैसा चाहिए वैसा जमा नहीं। इधर उसका

ध्यान लग नहीं रहा था। नज़र उठाकर उसने आज एक बार भी गिरींद्र की तरफ नहीं देखा और खेल का निश्चित समय अभी पूरा नहीं हुआ था तभी उठ गई। जाते वक्त गिरींद्र ने कहा—'रुपये तो आपने रात भेज दिये मगर खुद नहीं गईं, चलिए, कल फिर चला जाय।'

ललिता नतमुख होकर, धीमे स्वर में बोली—'नहीं, और कुछ नहीं, मेरी तबियत खराब हो गई थी।'

'अब तो दुरुस्त है, कल तो आप को जाना ही होगा'—गिरींद्र ने मुसकुराते हुए कहा।

'नहीं नहीं, कल मुझे समय नहीं मिलेगा'—ललिता जल्दी जल्दी उस आँगन से चल पड़ी। आज केवल शेखर के भय से उसका मन खेल में नहीं लगा, सो बात नहीं; उसे स्वयं भी गिरींद्र के साथ खेलते गंभीर लज्जा का अनुभव हो रहा था।

शेखर के परिवार की तरह वह बचपन से ही मनोरमा के घर में आती-जाती रही थी, कभी परायापन नहीं मालूम हुआ। पड़ोस के इस परिवार में भी सबके समक्ष हँसती-खेलती, बोलती-चालती आई थी। इसीलिए चारु के मामा के सामने वह बिना किसी संकोच के आने लगी थी, परन्तु आज खेल में दुपहर का सारा समय उसके लिए कितना असह्य प्रतीत हुआ! चार-पाँच दिनों के इस अल्प परिचय के बीच ही गिरींद्र ललिता को स्निग्ध आँखों से देखने लग गया था। एक नारी के लिए पुरुष की प्रीति-स्निग्ध दृष्टि इतनी लज्जाकर हो सकती है, इस बात की कल्पना तक कभी उस बेचारी ने नहीं की थी।

घर जाकर वह वहाँ रुकी नहीं, चटपट शेखर के यहाँ पहुँची और अपने काम में लग गई। बचपन से ललिता इस घर के हलके और मामूली काम-काज करती आई थी। किताबें उठाकर तरतीब से रखना, टेबुल सजाना, दवात-कलम झाड़-पोछकर साफ-सूफ रखना—ऐसे ऐसे काम वही करती थी। नहीं तो शेखर के कमरे की चीज़ें किसी बेढंगी दूकान की वस्तुओं की भाँति ही कई दिन तक बिखरी पड़ी रह जातीं। इधर छः सात दिनों की उपेक्षा से

यह सारा काम-काज पड़ा था। वह शेखर के आने से पहले ही सब ठीक कर देना चाहती थी। तत्परतापूर्वक उसने व्यवस्था का काम शुरू कर दिया।

ललिता को जभी समय मिलता वह शेखर के घर आ जाती। इस परिवार में कभी किसी को उसने पराया नहीं समझा, उसके प्रति भी यही भाव भुवनेश्वरी आदि का रहता था। आठ साल की जब वह थी तभी माँ-बाप उसके मर गये और तब से उसके ननिहाल में ही थी। और तभी से छोटी बहन की तरह शेखर के निकट सम्पर्क में ललिता रहती थी, उसी की कृपा से उसने पढ़ना-लिखना सीखा था। ललिता के निर्माण में सब से ज्यादा हाथ शेखर का ही था।

शेखर की प्रीति और सहानुभूति ललिता को पर्याप्त मात्रा में प्राप्त थी—यह सभी जानते थे। परन्तु इस प्रीति और सहानुभूति की सीमा अब कहाँ तक आगे बढ़ गई है, इसका आभास किसी को नहीं हुआ था, स्वयं ललिता को भी नहीं। बचपन से ही वह शेखर की स्नेहभाजन रही है, बड़े सहोदर की भाँति वह भी अपनी वत्सलता उन्मुक्त भाव से इस बालिका पर बरसाता आया है—किसी को इसमें अस्वाभाविकता, विषमता या अलोचनीयता भला क्यों प्रतीत होगी? और इसीलिए कभी किसी के हृदय में यह कल्पना तक नहीं उठी कि ललिता वधू की भूमिका में इस परिवार के मध्य प्रवेश करेगी, न ललिता के मामा के घर में किसी को ऐसा ख्याल आया और न नवीन राय के परिवार में ही; भुवनेश्वरी को भी कभी इस प्रकार की धारणा नहीं हुई थी!

ललिता ने सोचा था—उनके आने से पहले ही मैं निपट लूँगी। लेकिन बाहर जूतों की मचमचाहट सुनते ही उसने घड़ी की ओर नज़र फेंकी, विविध वितर्कों और विचारों में डूब गई थी वह। समय का ध्यान ही नहीं रहा। कमरे में एक तरफ वह खड़ी हो गई।

शेखर अंदर आया—'ओह् हो! तुम यहाँ हो, रात थिएटर से कब लौटी थीं?'

शेखर आरामकुर्सी पर लेट गया। ललिता को शिर से पैर तक देखता रहा। कुछ देर बाद फिर कहा—"रात कब लौटीं? दो बजे? तीन बजे?..... अरे! चुप्पी साध ली!'

ललिता पहले की तरह निस्तब्ध, मौन खड़ी रही।

शेखर ने विरक्तभाव से कहा—'नीचे जाओ, माँ बुलाती हैं।'

भुवनेश्वरी नाश्ता के लिए तश्तरी सजा रही थीं। ललिता आकर पास ही बैठ गई—'माँ, तुमने मुझे पुकारा था?'

'कहाँ! नहीं तो!' भुवनेश्वरी ने ललिता की तरफ देखा—'मुंह क्यों तेरा आज मुरझाया हुआ है लली! कुछ खाया-पिया है न?'

ललिता ने स्वीकार-मुद्रा में माथा हिलाया।

भुवनेश्वरी ने कहा—'जा बिटिया, अपने भाई को नाश्ता दे आ फिर मेरे पास ज़रूर आना।'

ललिता नाश्ता की तश्तरी दाँयें हाथ में और बाँयें हाथ में पानी-भरा गिलास लिये शेखर के कमरे में आई। लेकिन अभी तक वह उसी प्रकार आँखें मूँदे हुए आरामकुर्सी पर बैठा था, न तो ऑफिस के कपड़े और जूते उतारे थे, न हाथ-मुँह ही धोया था। नज़दीक आकर ललिता ने आहिस्ते से कहा—'नाश्ता लाई हूँ।'

'कहीं रख दो'—शेखर आँख बिना खोले ही बोला।

लेकिन ललिता वैसी की वैसी खड़ी रही, साँस तक को मानो रोक लिया हो।

शेखर न देखकर भी सब कुछ देख रहा था, ललिता गई नहीं है। कुछ देर की नीरवता के बाद उसने कहा—'कब तक खड़ी रहेगी ललिता मुझे अभी देरी है, नाश्ता रखकर चली जा।'

ललिता को अन्दर ही अन्दर आ रहा था गुस्सा लेकिन धीमी आवाज़ में उसने कहा—'नीचे जाकर क्या करूँगी, कोई काम भी तो मुझे है नहीं।'

अब जाकर शेखर ने आँखें खोलीं और मुसकुराते हुए कहा—'क्या खूब! नीचे काम नहीं है! अरे उस मकान में तो होगा और नहीं तो उससे पड़ोसवाले मकान में कोई न कोई काम ज़रूर ही होगा! घर तुम्हारा क्या एक ही है?'

'अच्छा!'—ललिता कुपित हो गई, तश्तरी और गिलास टेबुल पर उसने रख दिया, रख क्या दिया—मानो पटक दिया और तीव्र गति से बाहर निकल गई। शेखर ने आवाज़ दी—'शाम को एक बार आ जाना।'

'सौ बार इन सीढ़ियों पर आना जाना मुझ से नहीं सधेगा'—ललिता ने जवाब में कहा, स्वर में रूखापन था।

नीचे आते ही भुवनेश्वरी ने कहा—'भैया को नाश्ता तो दे आई, पान तो ले ही नहीं गई!'

'मुझे बहुत भूख लगी है अम्मा, मुझसे नहीं होगा। कोई और जाकर दे आये'—कहती कहती ललिता धम्म से चौखट के पास ही बैठ रही।

लड़की की विरक्त मुखमुद्रा देख भुवनेश्वरी ने कहा—'अच्छा, तू खा। नौकरानी दे आयेगी।'

ललिता चुपचाप खाने लगी।

वह थियेटर नहीं गई थी, फिर भी शेखर ने उस पर व्यंग-बाण छोड़े थे। चार-पाँच दिन तक इसी परिताप के कारण वह शेखर के समक्ष नहीं हुई। जब शेखरनाथ दफ़्तर चले जाते तो दुपहर में ऊपर जाकर वह सब ठीक-ठाक कर आती। बाबू साहब को अपनी भूल जब मालूम हुई लगे ललिता से मिलने को छटपटाने! दो बार बुलवाया भी, पर वह नहीं गई।

चतुर्थ परिच्छेद

मुहल्ले का एक बूढ़ा भिखमंगा जब तब आया करता था। ललिता को उसके प्रति बहुत ममता थी, हरेक बार वह उसे एक एक रुपया दे डालती। रुपया पाकर वह बूढ़ा आन्तरिक कृतज्ञता ज़ाहिर करता और आशीर्वाद की झड़ी लगा देता— ललिता की आत्मा को इससे बेहद सन्तोष होता, भिखारी के मुँह से दुआ की बातें सुनना उसे बहुत ही पसन्द था। वह कहता—'ललिता उस जनम में मेरी माँ थी, पहली दफे देखकर ही मैं यह समझ गया था।' ललिता का वही बूढ़ा लड़का आज सबेरे ही आ पहुँचा और बाहर से आवाज़ दी—'माँ, कहाँ गई मेरी माँ?'

लेकिन आज अपने 'पुत्र' की पुकार ललिता को उल्लसित नहीं कर सकी— शेखर घर में ही है, वह रुपया कैसे लायेगी? कुछ सोचकर फिर वह मामी के पास गई। मामी नौकरानी पर किसी कारण से आगबबूला हो गई थीं, अभी तक उनका गुस्सा उतरा नहीं था। उनकी रुद्र मुखाकृति देखकर ललिता लौट आई और झाँक कर बाहर देखा। बूढ़ा लाठी टेके जमकर बैठा हुआ था, पहले कभी वह यहाँ से खाली हाथ नहीं गया है; आज क्या यों ही उसे वापस जाना होगा?—ललिता का मन मान नहीं रहा था।

भिखमंगे ने फिर आवाज़ दी।

'बहन, तुम्हारा वह लड़का आया है'—आन्नाकाली ने अन्दर आकर खबर दी। ललिता ने कहा—'काली, एक काम तो कर, मैं हाथ जोड़ती हूँ, जा शेखर भैया से एक रुपया तो लेती आ।'

काली दौड़ गई और छन भर में लौट आई—'लो यह अपना रुपया।'

'शेखर भैया ने कुछ कहा वहा भी?'

'नहीं, कुछ तो नहीं। कहा—चपकन के पाकेट से रुपया निकाल ले। और मैंने निकाल लिया।'

'और भी कुछ कहा ?'

'नहीं, और कुछ नहीं'—आन्नाकाली इतना कह कर खेलने चली गई। ललिता ने बूढ़े को विदा किया, आज उसे अपनी विरुदावली का कीर्तन अच्छा नहीं लगा।

इधर कई दिनों से मनोरमा के घर ताश की धमाचौकड़ी खूब जम रही थी। आज दुपहर को ललिता नहीं गई, सचमुच ही उसके शिर में दर्द था, वह सो रही। शाम को उसने काली को बुलाकर पूछा—'शेखर भैया के यहाँ पढ़ने जाती है न ?'

'हाँ, जाती तो हूँ'—काली ने शिर हिलाकर बतलाया।

'शेखर भैया मेरे बारे में भी कुछ पूछते हैं ?'

'नहीं तो !.....हाँ हाँ, परसों पूछा था—दुपहर में ललिता ताश खेलने जाती है कि नहीं ?'

'तो तूने क्या जवाब दिया ?'—ललिता ने व्यग्र भाव से पूछा।

काली ने कहा—'तुम जाती हो खेलने, यही तो कहा। शेखर भैया ने पूछा, कौन कौन खेलता है ? मैंने बतलाया, चारु बहन की माँ और ललिता बहन एक तरफ, चारु बहन और मामा एक तरफ खेलते हैं। बहन, तुम अच्छा खेलती हो या मामा ? सुना है, तुम्हीं अच्छा खेलती हो—है न !'

ललिता से न रहा गया—'काली, यह सब उन्हें बतलाने की क्या ज़रूरत थी ? अब कभी कुछ नहीं दूँगी तुझे, सभी बातों में अपनी टाँग अड़ाती फिरती है !'—वह गुस्सा के मारे उठकर बाहर चली गई।

काली को कुछ समझ में नहीं आया—ललिता बहन आखिर नाराज़ क्यों हो गई ?

ललिता दो दिन से नहीं आती है, मनोरमा के यहाँ ताश का खेल बन्द है। उसकी ओर गिरीन्द्र आकर्षित होने लगा था, मनोरमा को यह सन्देह और पक्का हो गया। ये दोनों दिन गिरीन्द्र के मानो बहुत मुश्किल से कटे, शाम को टहलना उसने बन्द कर दिया। इधर से उधर, उधर से इधर विक्षिप्त-सा वह

मकान के अन्दर ही चक्कर काटता रहता। आज दुपहर में आकर मनोरमा के पास खड़ा हो गया—'बहन क्या आज भी खेल नहीं होगा?'

मनोरमा ने कहा—'कैसे चलेगा खेल गिरीन, लोग कहाँ हैं? न हो तो आओ, तीन ही जने खेलें।'

'भला तीन से भी कहीं खेल हुआ है'—गिरीन्द्र ने हतप्रभ होकर कहा—'ललिता को एक बार बुलवाओ न।'

'वह नहीं आयेगी।'

अपनी विकलता को छिपाते हुए गिरीन्द्रने कहा—'आयेगी क्यों नहीं? घरवालों ने मना कर दिया है क्या?'

मनोरमा ने कहा—'नहीं, उसके मामा-मामी उस प्रकार के आदमी नहीं हैं; वह स्वयं ही नहीं आती है।'

गिरीन्द्र को प्रसन्नता हुई—'तो तुम एक बार जाओ, ललिता ज़रूर आयेगी।' इतना कहने के बाद मनोरमा की मुसकान देखकर उसको अपनी भूल का परिज्ञान हुआ—वह यदि स्वयं ही नहीं खेलना चाहती है तो तुम्हें क्या पड़ा है!

मनोरमा ठठाकर हँस पड़ी—'अच्छा, तो जाऊँ उसे पकड़ लाऊँ।' कुछ देर बाद वह ललिता को साथ लेती आई और फिर चला तास। दो दिन नागा गया था, आज थोड़ी ही देर में खेल खूब जम गया। ललिता और मनोरमा जीत रही थीं।

दो घंटे बाद काली आई और बोली—'शेखर भैया बुलाते हैं बहन, ज़ल्दी चलो।'

'आज ऑफिस नहीं गये हैं क्या?'—ललिता ने पूछा, उसका चेहरा किसी अज्ञात आशंका से फीका पड़ गया था, तास की पत्तियाँ बीच में अचल हो गई थीं।

'गये तो थे लेकिन लौट आये हैं।'

ललिता ने तास रख दिया, आँखें उसकी काली की ओर थीं। मनोरमा से कहा—'जाती हूँ अभी।'

'नहीं नहीं, दो हाथ और खेल ले।'

'नहीं मामी, वह नाराज़ हो जायेंगे'—अनुमति की प्रतीक्षा किये बिना ही वह चली गई। गिरीन्द्र ने मनोरमा से पूछा—'यह शेखर भैया कौन होते हैं बहन ?'

'वह क्या देख रहे हो बड़ा मकान।'

'तो, नवीन बाबू की ललिता के मामा से कोई नाता पड़ता है ?'

'नाता कैसा ? उसके मामा का यह जीर्ण-शीर्ण मकान तक बूढ़ा हज़म कर जाना चाहता है'—गिरीन्द्र को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। वह मनोरमा की तरफ टुकुर टुकुर ताकने लगा। मनोरमा ने तब सारी बात बतलाई—कैसे पिछले साल गुरुचरण की मँझली लड़की का ब्याह हुआ, बेहद ऊँचे ब्याज पर नवीन राय ने रुपये कर्ज़ दिये और घर गिरवी (मकफूल) रखवा लिया। यह रक़म तो कभी अदा हो सकेगी नहीं और फिर इस मकान पर नवीन राय दखल जमा लेंगे। वार्तालाप के इस प्रसंग को समाप्त करती हुई मनोरमा ने कहा—'जानते हो बुड्ढा चाहता क्या है ? बाबू गुरुचरण के पुराने और बेढंगे मकान को तोड़कर इसी जगह एक बड़ा आलीशान मकान शेखर के लिये बनवा दें; दोनों लड़कों के लिये दो मकान !—नीयत बुरी नहीं है !'

यह आख्यान सुनकर गिरीन्द्र को खेद हो रहा था। उसने जानना चाहा—'गुरुचरण बाबू के और भी तो लड़कियाँ हैं, सभी का बेड़ा कैसे पार लगायेंगे ?'

'अपनी लड़कियों के अलावा ललिता भी तो है'—मनोरमा ने कहा—'उसके माँ-बाप नहीं रहे, गरीब मामा न जाने कैसे अपना कर्तव्य पालन कर सकेगा ! बड़ी हो चली है, दो-एक साल में उसको कहीं न कहीं डाल देना ही होगा। उस समाज में कोई मदद देनेवाला हो या न हो, परन्तु दंडित और बहिष्कृत करनेवालों की वहाँ कमी नहीं है। हमीं अच्छे हैं गिरीन !'

गिरीन्द्र चुपचाप सुन रहा था, मनोरमा ने फिर कहा—'अभी उस दिन ललिता की बात उठने पर उसकी मामी रो पड़ी, कैसे उसका क्या होगा; ललिता की फिक्र से गुरुचरण बाबू मरे जा रहे हैं, खाना-पीना कुछ भी उन्हें नहीं

सुहाता। तुम्हारे मुंगेर में, गिरीन, है कोई ऐसा लड़का जो बिना मोल-भाव के ही लड़की को अपनी सहचरी बना ले ? लड़की लेकिन हज़ार में एक है !'

विषाद-मुद्रा में कृत्रिम मुसकान भरकर गिरींद्र ने कहा—'लड़का कहां से गढ़ूं दीदी, हाँ, खुद ही मैं कुछ रुपये-पैसे का इंतजाम उन्हें कर दूं सो हो सकता है।'

गिरींद्र के पिता अच्छे डाक्टर थे, कीर्ति के साथ साथ सम्पत्ति भी पर्याप्त मात्रा में उन्होंने उपार्जन किया था—अभा गिरींद्र ही उस सम्पत्ति का एकमात्र स्वत्वाधिकारी था।

'कर्ज़ दोगे ?'—मनोरमा ने पूछा।

गिरींद्र ने कहा—'कज़ की क्या बात करती हो दीदी, सकेंगे तो पटा देंगे नहीं तो न सही।' मनोरमा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, उससे रहा नहीं गया। आवेश में आकर बोली—'उन्हें रुपये देने से भला तुम्हें फायदा क्या होगा ? वे हमारे आखिर होते ही कौन हैं ? उनका समाज भी तो दूसरा ही है। यह तो पानी में रुपया फेंकना हुआ।'

नीचे से ऊपर तक बहन की ओर सरसरी निगाह डालकर धीमी आवाज़ में उसने कहना शुरू किया—'माना कि उनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं लेकिन गुरुचरण बाबू बंगाली तो हैं; उन्हें जिस वस्तु की नितांत आवश्यकता है वही मेरे पास प्रचुर परिमाण में पड़ी हुई है। एक बार, बहन, तुम ललिता की मामी से पूछो तो; यदि वे लोग चाहें तो मैं रुपये देने को राजी हूँ। ललिता न उनकी है न हमारी, वह मातृ-पितृहीन एक दीन बालिका है; उसकी शादी का सारा बोझ अगर तुम या मैं या कोई तीसरा ही उठा ले तो क्या हर्ज़ है ?'

गिरींद्र की ये बातें मनोरमा को अच्छी न लगीं। इससे उसका कुछ भी बनने-बिगड़नेवाला नहीं था, तो भी एक आदमी दूसरे आदमी को बिलकुल निरपेक्ष भाव से बहुत भारी रक़म दे डाले—यह बात बहुतों को अच्छा नहीं लगता।

चारुबाला यह सब चुपचाप सुन रही थी, अब खुशी के मारे उसका बाल-हृदय उछल पड़ा। छलांग मारकर वह गिरींद्र के बिलकुल क़रीब आ गई, बोली—'दो न मामा, मैं काली की माँ को कह आती हूँ।'

मनोरमा ने अपनी लड़की को इस चंचलता के लिए फटकारा—'तू क्या समझेगी इन बातों को !'

'हाँ, उनको कहकर देखो तो दीदी'—गिरींद्र ने कहा—'परसों ज़रा देर के लिए गुरुचरण बाबू से मुलाकात हुई थी, बहुत ही भले आदमी प्रतीत हुए। तुम उन्हें कैसा समझती हो ?'

मनोरमा ने कहा—'मैं ही क्या, सारी दुनिया उन्हें भला आदमी कहती है, जैसे स्वयं हैं पत्नी भी उन्हें वैसी ही मिली है। इसीलिए तो अफ़सोस होता है गिरीन, ऐसे भले आदमी को कल घर छोड़ दर-दर भटकना पड़ेगा ! देखा नहीं तुमने ? शेखर बाबू का नाम सुनते ही ललिता कैसे भागी ? ललिता ही क्यों, सारे घर का यही हाल है—सब के सब जैसे बिक गये हों ! लेकिन खुशामद करने से क्या ? नवीन राय के जाल में एक बार पड़कर फिर कोई उससे बाहर निकल आ सकेगा, असंभव है असंभव !'

गिरींद्र ने पूछा—'तो दीदी कहोगी न उनसे ?'

'करूंगी बात। तुम्हारी सद्भावना से यदि उनका भला हो तो अच्छा ही है'—मनोरमा मुसकुराने लगीं—'दाता बनने के लिये तुम्हीं क्यों इतने व्याकुल हो उठे हो, गिरीन ?'

गिरींद्र ने कहा—'और क्या दीदी ? एक के कष्ट में दूसरा सहायक हो, यह भी क्या खास बात है ? गिरींद्र के मुंह पर लज्जा की रेखा खिंच गई, वह बाहर चला गया। कुछ देर में उसे फिर अपने पास पाकर मनोरमा ने पूछा—'इतनी ज़ल्दी ? बात क्या है ?'

'—तुमने जो उन लोगों का रोना रोया है, उसमें तथ्य का अंश थोड़ा ही मालूम पड़ता है क्योंकि उनकी ललिता तो काफी खर्च करती है। उस दिन खुद थिएटर देखने नहीं गई फिर भी अपनी बहन को दश रुपये दिये थे। पूछो न चारु से, महीने में पच्चीस से कम उसका अपना खर्च नहीं होगा !'

मनोरमा को विश्वास नहीं हो रहा था।

चारुवाला ने कहा—'हाँ, अम्मा, शेखर भैया का रुपया खर्च करती है। बचपन से ही वह शेखर भैया को आलमारी से, दो चार दश, जितनी मर्जी हुई, उतना रुपया निकाल लेती रही; कोई उसे मना नहीं करता।'

'शेखर बाबू को यह सब पता है?'—विस्मित मनोरमा ने अपनी लड़की से पूछा।

'हाँ, उनके सामने ही तकिया के नीचे से चाबियों का गुच्छा लेकर वह आलमारी खोलती है और रुपये निकाल लेती है। पिछले महीने में आन्ना काली ने अपनी लड़की (खिलौने की कठपुतरी) को ब्याहा, इतने रुपये लगे; और कौन देगी, ललिता बहन ने ही तो दिया!'

मनोरमा ने कहा—'हो भी सकता है। नवीन राय जैसा खुद मक्खीचूस है, बेटे उसके वैसे नहीं हैं; उन दोनों में माँ का गुण उतरा है, तभी उनमें दया-माया है। दूसरी बात यह भी है कि ललिता बड़ी अच्छी लड़की है, छुटपन से ही आगे-पीछे करती आई है, भैया भैया कहा है, इसी से सभी उसको निश्छल प्यार करते हैं। हाँ, चारु, तू तो उनके यहाँ बराबर आती जाती रहती है; माघ में शेखर की शादी होगी? सुना है, कोई बड़ा-सा यजमान हाथ लगा है!'

'हाँ, माँ, इसी माघ में होगी। सब ठीक-ठाक है।'

पंचम परिच्छेद

गुरुचरण कुछ इस प्रकार के व्यक्ति थे कि उनसे किसी भी उम्र का आदमी निःसंकोच बात-चीत करता था। दो ही चार दिन के परिचय से गिरींद्र के साथ उनकी एक प्रकार की घनिष्ठता हो गई। बाबू गुरुचरण की मानसिक स्थिति यह हो गई थी कि जिस तरह युक्तियाँ और दलीलें देकर बातें करना उन्हें पसन्द था उसी तरह दूसरों की दलीलों से हार मान लेने पर भी उनको कुछ बुरा सा नहीं लगता था।

शाम को चाय पीने का निमंत्रण सदा के लिए ही उन्होंने गिरींद्र को दे रक्खा था। दफ़्तर से लौटते ही उनका दिन-कृत्य समाप्त हो जाता। हाथ-मुंह धो आने पर ललिता से पूछते—'चाय तैयार है? ओ काली, अपने गिरीन मामा को ज़रा बुला तो ला।' फिर दोनों चाय पीते और तरह तरह की बातें छिड़ जातीं।

किसी किसी दिन ललिता मामा की नज़र बचाकर बातें सुनती। ऐसा प्रायः तभी होता जिस दिन गिरींद्र वर्तमान समाज के विरुद्ध, अपनी सारी शक्ति लगा-कर, आग उगलते होते। समाज की हृदयहीनता, अनुचित उपद्रव—सभी तो सत्य था। पीड़ित हृदयवाले इन प्राणियों को गिरींद्र की बातें तापहारिणी प्रतीत होतीं। अन्त में गुरुचरण अपनी गर्दन हिलाकर कहते—ठीक, बिलकुल ठीक कहते हो गिरीन बाबू! कौन नहीं चाहता समय पर किसी सुपात्र तरुण को अपनी कन्या देना किन्तु यह सब हो कैसे? बिना रुपया-पैसे के तुम कर ही क्या सकते हो! समाज आज्ञा तो दे देता है पर दिक्कतों का हल तो करता! देखो न हमारा यह घर—इसे भी हम नहीं बचा पाये, बंधक रख दिया है! कल न सही परसों, कभी न कभी यह घर हमें छोड़ना ही पड़ेगा और तब बालबच्चों को लिये हुये, खानाबदोश की तरह, सड़क पर जाकर हम खड़े होंगे उस दिन समाज नहीं पूछेगा।'

गिरींद्र चुपचाप सुन रहा था। गुरुचरण ने क्षणभर के लिए रुककर फिर कहना शुरू किया—'ऐसे समाज से सम्बन्ध टूट जाय वही अच्छा। आदमी शान्तिपूर्वक सांस तो ले सकेगा। दुखियों का दुख जो न समझे, गिरे हुओं को जो सहारा न दे सिर्फ सज़ा ही सज़ा, दण्ड ही दण्ड, देता चले वह समाज हमारे जैसे गरीबों के लिए नहीं, बड़े बड़े लोगों के लिए लाभदायक भले ही हो।

इन बातों को ललिता सिर्फ सुनकर ही नहीं रह जाती, रात को सोते समय जबतक उसे नींद न आ जाती तब तक वह सोचती रहती। एक एक अक्षर उसके हृदयपट पर मानों अंकित हो गया हो। मन ही मन उसने कहा—ठीक, गिरींद्र बाबू का विचार बिलकुल ठीक है। अपने मामा के लिए ललिता के हृदय में गंभीर श्रद्धा थी। उसी मामा की सहानुभूति में गिरींद्र जो भी कुछ कहता वह ललिता को अच्छी लगती। वह समझती थी कि मेरी चिन्ता से मामा दुबले-पतले होते जा रहे हैं, उनकी सारी दुश्चिन्ताओं की जड़ एकमात्र मैं हूँ, लेकिन क्यों?—ऐसा क्यों है? मामा समाज से पतित क्यों हो जायेंगे? अगर कल मेरी शादी हो जाय और परसों मैं विधवा होकर फिर मामा के पास लौट आऊँ तब तो समाज उन्हें पतित या भ्रष्ट नहीं कहेगा! ऐसा क्यों?···आदि आदि सोचती वह सो जाती।

उसके मामा के प्रति जो भी सहानुभूति दिखलाता, उनके दुख-दर्द को समझने की कोशिश जो भी करता वह ललिता की श्रद्धा का पात्र हो ही जाता। गिरींद्र को ललिता अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगी। अब गुरुचरण की तरह वह भी संध्या होने और चाय पीने के समय की प्रतीक्षा में रहती। पहले गिरींद्र ललिता को 'आप' कहकर सम्बोधन करता था; गुरुचरण ने एक दिन कहा—'आप' क्यों? गिरीन, उसको 'तुम' कह कर सम्बोधित किया करो। गिरींद्र ने बात मान ली।

एक दिन गिरींद्र ने पूछा—'तुम चाय नहीं पीतीं ललिता?'

ललिता ने नज़र नीचे कर ली। गुरुचरण ने कहा—'इसको शेखर ने मना कर दिया है, स्त्रियों का चाय-वाय पीना वह पसन्द नहीं करता।'

यह दलील गिरींद्र को अच्छी नहीं लगी थी, ललिता को इस बात का पता लग गया।

शनिवार को उनका 'चाय चक्रम्' ज़रा देर तक चलता। आज भी शनिवार ही था, चाय वे लोग पी चुके थे। गुरुचरण का बातचीत में मन लग नहीं रहा था, बीच बीच में वह किसी अन्य चिन्ता में डूब जाते थे। गिरींद्र को यह समझते देर न लगी—'आज आपकी तबियत ठीक नहीं है ?'

*हुक्का से मुँह हटाकर गुरुचरण ने कहा—'कहाँ ! नहीं तो ! तबियत ठीक ही है।'

'तो दफ्तर में ही कुछ हुआ होगा'—गिरींद्र ने शालीनतापूर्वक कहा।

'नहीं, नहीं, दफ्तर में क्या होगा ?'—आश्चर्य से गिरींद्र की ओर देखने लगे। भले आदमी को यह मालूम ही न हो सका कि भीतरी क्षोभ के कारण कैसे उनका अपना चेहरा आज उतरा हुआ है !

ललिता पहले कुछ दिनों तक इन लोगों की बातें केवल सुना ही करती किन्तु अब दो-एक बार स्वयं भी मुँह खोलती। उसने कहा—'हाँ मामा, आज तुम्हारी तबियत सुस्त मालूम पड़ती है।'

गुरुचरण फीकी हँसी हँसकर बोले—'ठीक, सचमुच ही मेरा मन आज प्रकृतिस्थ नहीं है, तूने पकड़ा ठीक है।'

ललिता और गिरींद्र विस्मय और जिज्ञासा से गुरुचरण की तरफ देख रहे थे। उन्होंने कहा—'नबीन भाई हमारी सारी स्थिति से भलीं भाँति परिचित हैं, फिर भी आज बीच सड़क पर खड़े खड़े ही उन्होंने कसकर सुना दी; और उनका ही क्या दोष ? छः महीने हो गये, अभी तक ब्याज का एक पैसा भी नहीं दे सका हूँ...'

---

*हुक्का (नरेली) पीना बंगाल के सभ्य समाज में भी बुरा नहीं समझा जाता।

ललिता डर गई, उसने चाहा कि प्रसंग को पलट दे। उसका भोला-भाला मामा न जाने दूसरे के सामने अपने घर की सभी बातें बक जायगा। इसीलिए झट से लड़की ने कहा—'रहने दो मामा पीछे देखा जायगा।'

गुरुचरण को रहस्य-भेद का ज़रा भी ख्याल न आया, वह बोले—'पीछे क्या देखा जायगा? देखो न गिरीन, हमारी ललिता चाहती है कि उसका मामा ज़्यादा सोच-फिकर न करे। लेकिन, दुनिया तो ऐसा नहीं चाहेगी!'

'नवीन बाबू ने आज क्या कहा?'—गिरींद्र ने जानना चाहा।

ललिता को पता नहीं था कि गिरींद्र सभी बातें जानता है, इसी से उसका यह प्रश्न ललिता को अच्छा नहीं लगा। परन्तु गुरुचरण ने खोलकर कहा—'नवीन राय की स्त्री बहुत दिनों से अजीर्ण रोग की शिकार थीं, अब बीमारी और बढ़ गई है। डाक्टरों ने आबोहवा बदलने के लिए किसी बेहतर जगह में उन्हें ले जाने की सलाह दी है। ऐसे मौके पर नवीन राय अगर अपने रुपये में से कुछ रुपये मुझ से मांगते हैं तो यह उचित ही है।'

गिरींद्र कुछ देर तक चुप रहा, फिर आहिस्ते से कहा—'अगर आप कुछ ख्याल न करें तो गुरुचरण बाबू, एक बात आप से कहना चाहता हूँ, आज्ञा हो तो कहूँ।'

गुरुचरण बाबू, भभाकर हँस पड़े—'किसी को भी कुछ कहते मेरे यहाँ सँकोच नहीं होता, आप को ही क्या हो गया गिरीन बाबू? कहिए कहिए, क्या कहना चाहते थे?'

गिरींद्र ने कहा—'बहन बतलाती थीं, नवीन बाबू सूद (ब्याज) खूब कसकर लेते हैं। मेरे पास बहुत सारे रुपये यों ही पड़े हैं, उन्हें अभी किसी काम में लगाना नहीं है; नवीन बाबू को दे न दें आप, ऋण का परिशोध अभी ही क्यों न कर लिया जाय?'

ललिता और गुरुचरण दोनों को अत्यंत आश्चर्य हुआ, इस प्रकार की बात स्वप्न में भी सुनने की आशा उन्हें नहीं थी—विस्मय ने कुछ क्षणों के लिए उन दोनों को मूक बना दिया।

गिरीन्द्र को अधिक कुछ कहते संकोच हो रहा था तथापि उसने कहा—'रुपयों की आवश्यकता मुझ को तो अभी है नहीं, आपको जब सुविधा हो दे दीजियेगा और नवीन बाबू को उसकी बड़ी जरूरत है, इसीलिए मैं कहता था कि...'

गुरुचरण ने पूछा—'सारी रकम दोगे ?'

'जी हाँ,'—गिरीन्द्र ने अपनी आँखें ज़मीन पर गड़ाये हुए कहा—'उन्हें आवश्यकता जो है।'

गुरुचरण कुछ कहने ही जा रहे थे कि काली दौड़ती हुई आई। ललिता के कंधे पर हाथ रखकर उसने कहा—'दीदी, शेखर भैया बुला रहे हैं, कपड़ा पहन लो और जल्दी चलो; थियेटर देखने के लिए, हाँ, जल्दी चलो।'—इतना कह कर उलटे पैर ही वह लौट गई।

उस लड़की की व्यस्तता देखकर गुरुचरण को हँसी आई, ललिता स्थिर और शान्त रही।

थोड़ी देर बाद काली फिर आई—'अरे ! उठीं भी नहीं, दीदी सभी तो तुम्हारे इन्तज़ार में खड़े हैं !' लेकिन ललिता ने वहाँ से हिलने-डुलने का नाम तक न लिया, वह आखिरी घड़ी तक इन लोगों की बातें सुनेगी। गुरुचरण ने काली की ओर देखा और कुछ मुसकुराये। फिर ललिता के शिर पर दायाँ हाथ रखते हुए कहा—'जा न लली, वे कबतक खड़े रहेंगे ?'

बाध्य होकर उस बेचारी को उठना पड़ा लेकिन जाते-जाते कृतज्ञतापूर्ण जिस स्निग्ध दृष्टि से वह गिरीन्द्र को देखती गई वह उससे अज्ञात न रहा।

दश-एक मिनट के बाद कपड़ा पहनकर एक बार ललिता फिर बाहर आई—पान देने के बहाने, बिलकुल चुपचाप ! गिरीन्द्र चला गया था। गुरुचरण उसी पुरानी-बड़ी तकिया पर माथा रखकर लेटे हुए थे, उनकी आँखों के दोनों छोर भीग रहे थे। ललिता को यह समझते देर न लगी कि ये दुख के आँसू नहीं, सुख के आँसू हैं; इसी से उसने उनका ध्यान-भंग करना अनुचित समझा—जैसे ही आई थी वैसे ही अन्दर चली गई।

दूसरे ही क्षण वह शेखर के कमरे में थी, लेकिन उसकी भी आँखें आँसू से तर थीं। वहाँ काली भी नहीं थी, सबसे पहले वही जाकर बग्घी पर बैठ गई थी। शेखर शायद ललिता की प्रतीक्षा में ही अब तक खड़ा था। वह पिछले आठ-दश दिन से शेखर के यहाँ नहीं आई थी, इसलिए शेखर उसपर कुछ नाराज़ भी था। आज उसने जब ललिता के अश्रुपूरित नेत्र देखे तो विस्मित होकर पूछा—'अरे! रोती हो?'

ललिता ने गर्दन हिलाकर संकेत किया—'नहीं।'

इन कई दिनों में ही शेखर का रुख बदल गया है, वह ललिता के बिलकुल निकट आ गया। बहुत स्नेह-पूर्वक उसने दाहिने हाथ की कुछेक उँगलियों से लड़की की ठुड्डी उठाई—'सच! तुम तो रोती हो!'

इस बार ललिता के लिए अपने को सँभालना मुश्किल हो गया, वह बैठ गई और आँचल से मुँह ढाँपकर रो पड़ी।

छठवाँ परिच्छेद

पाई पाई करके नवीन राय ने ब्याज और मूलधन सहित हिसाब किया और जब कुल रक़म सँभाल चुके तो बंधक का क़ानूनी काग़ज़ लौटाते हुए गुरुचरण से पूछा—'कहाँ से लाये हो यह सब ?'

'भाई साहेब ! दाता ने मना कर दिया है, नाम तो नहीं बतला सकता; मज़बूरी है।'

नवीन राय अन्दर ही अन्दर जल-भुनकर ख़ाक हो गये। उन्होंने यह नहीं समझा कि गुरुचरण सारी रक़म देने में एक बार ही समर्थ हो सकेगा, यह उनकी मनसा थी भी नहीं। उनकी धारणा तो ऐसी थी कि गुरुचरण का टूटा-पुराना घर तोड़कर नया महल खड़ा करेंगे, उसका नक़शा भी किसी अच्छे इंजीनियर से राय महाशय बनवा चुके थे। उन्होंने एक मँजे हुए राजनीतिज्ञ की मुद्रा में कहा—'भाई कसूर तुम्हारा नहीं, मेरा ही था। लेकिन गुप्त-दानी महानुभाव के नाम-धाम गुण-ग्राम जीता रहा तो एक दिन मैं भी सुन ही लूँगा। एक बार रुपया देकर फिर उसे वापस चाहना, यही कसूर है ! घोर कलिकाल आ गया !'

मर्माहत होकर गुरुचरण बोले—'यह क्या कहते हैं भाईजी, यह ऋण पटाकर भी आपकी दया का जो ऋण मेरे ऊपर है उससे तो उद्धार पाना असंभव ही है।'

नवीन राय हँस पड़े, इस हंसी में दुष्टता भरी थी। वह खूब चलता-पुर्जा आदमी है, गुरुचरण जो बातें कर रहे थे उनपर विश्वास कर लें तो फिर नवीन राय ही क्या ? वे बुद्धू नहीं थे, गुड़ के व्यापार से लखपती बने थे ! उन्होंने कहा—'यदि तुम्हारी वही भावना रहती तो इस तरह पाई पाई कर कुल रकम एक ही बार न दे देते ! मैंने तुमसे कुछ ही रुपये तो चाहे थे और

सो भी अपने लिए नहीं तुम्हारी बीमार भाभी के लिए। अच्छा, यह तो बताओ कितने ब्याज पर मकान बंधक रखा है ?'

माथा झुकाये ही गुरुचरण ने जवाब दिया—'मकान तो बंधक नहीं रखा है और ब्याज की भी कोई बात नहीं हुई है।'

नवीन राय को बिलकुल विश्वास नहीं हुआ, बोल उठे—'यों ही किसीने रुपया दे दिया !'

'जी, ऐसा ही समझिए। लड़का बड़ा सुशील और दयासागर है।'

'लड़का ? कौन है वह ?'

गुरुचरण चुप रहे, जितना उनके मुंह से निकल चुका था वही 'श्रांत' था।

'जब मनाही है तो रहने दो'—नवीन राय ने मुसकुराते हुए कहा—'लेकिन मैंने दुनिया बहुत देखी है, इसीलिए तुम्हें सावधान कर देता हूँ, वह व्यक्ति चाहे जो भी हों, इतनी अधिक भलाई करते करते कहीं तुम्हें किसी व्यूह में न फँसा दें !'

गुरुचरण ने उत्तर नहीं दिया। नमस्कार करके घर चले आये, वही क़ानूनी दस्तावेज़, जो नवीन राय ने लौटाया था, हाथ में था।

प्रायः प्रति वर्ष भुवनेश्वरी जलवायु परिवर्तन के लिए कलकत्ता से बाहर जातीं। इससे उनका स्वास्थ्य कुछ अच्छा हो जाता। नवीन राय ने उस दिन गुरुचरण से यही कहा था कि यात्रा का खर्च जुटा दो...यात्रा की तैयारी हो रही थी।

एक दिन शेखर अपना चमड़ेवाला सूटकेश खोले उसमें छोटे छोटे, पर आवश्यक, वस्तुएं तरतीब से रख रहा था। आनाकाली अन्दर आई और बोली—'शेखर भैया, कल तुम लोग जा रहे हो न ?'

शेखर ने नज़र उठाकर काली की तरफ देखा और कहा—'आओ ज़रा ललिता को भेज दो, क्या साथ ले जायगी क्या नहीं ले जायगी; आकर ठीक कर

जाय।' बात यह थी कि ललिता प्रति वर्ष भुवनेश्वरी की इस यात्रा में साथ जाती थी। शेखर समझ रहा था, इस बार भी जायगी ही।

काली ने माथा हिलाकर कहा—'ललिता बहन नहीं जायगी।'

'क्यों नहीं जायगी ?'

'माघ में उसकी शादी होनेवाली है, बाबूजी लड़के की खोज में जा रहे हैं।'

शेखर निर्निमेष उस लड़की की ओर देखता रह गया। काली-घर में जो भी कुछ सुना था, सब बकने लगी। उसे शेखर भैया जैसा श्रोता मिल गया था, और नई खबरें सुनाने का उत्साह इस उम्र में कितना अधिक रहता है!

'—गिरींद्र बाबू कहते हैं, लड़का अच्छा ही होना चाहिए, रुपया चाहे ज्यादा ही लगे। बाबूजी आज भी ऑफिस नहीं जायेंगे। खा-पीकर कहीं लड़का देखने जायेंगे। साथ में गिरींद्र बाबू भी होंगे।'

शेखर शान्त चित्त से सुन रहा था। अब उसकी समझ में यह बात आई कि क्यों ललिता ने इधर आना-जाना कम कर दिया है। काली कहती जा रही थी—'गिरींद्र बाबू बड़े अच्छे आदमी हैं शेखर भैया! मझली बहन की शादी में हमारा मकान चाचा (नवीन राय) के पास बंधक रखा गया था न! बाबूजी पहले कहा करते थे, दो-तीन मास के बाद हमें मकान छोड़ देना होगा—हम दर दर भटकते फिरेंगे; तभी तो गिरींद्र बाबू ने रुपये दिये। कल सारा रुपया बाबूजी ने चाचा का दे दिया। ललिता बहन कहती थीं, अब हमें कोई डर नहीं...सच है शेखर भैया?'

शेखर ने कुछ भी जवाब नहीं दिया। वह काली की तरफ पहले की तरह देखता भर रहा।

'क्या सोचते हो शेखर भैया! किस गुन-धुन में पड़े हुए हो?'—काली ने पूछा।

इस बार शेखर का ध्यान भंग हुआ। उसने चटपट कह दिया—'कुछ नहीं काली, ज़रा अपनी ललिता बहन को तो भेज दो, कहना, बहुत ज़रूरी काम है।'

काली तीर की तरह वहां से छूटी।

शेखर खुले सूटकेश की तरफ एकटक देखता हुआ बैठा था। क्या उसे ले जाना है और क्या नहीं—कुछ भी उसे मानो सूझता नहीं, वह किसी निर्विकल्पक समाधि में जैसे निमग्न हो गया हो!

ललिता ऊपर आई तो पहले खिड़की से झाँककर उसने देखा—शेखर मेज़ के सहारे खड़ा है, उसकी निगाह नीचे की तरफ है, लेकिन शून्यप्राय। इस प्रकार शेखर को उसने कभी नहीं देखा था। आश्चर्य और भय का मिश्रित भाव ललिता के हृदय में उदित हुआ। धीरे धीरे वह नज़दीक आई तो शेखर ने कहा—'बैठो।' वह स्वयं अस्तव्यस्त स्थिति में खड़ा रहा।

ललिता ने पूछा—'मुझे बुलाया था?'

'हाँ'—शेखर कहा—'सुबह की गाड़ी से ही मैं माँ के साथ बाहर जा रहा हूँ, इस बार लौटने में शायद देर हो। यह लो चाबी, उस आलमारी में रुपये हैं, जब जब ज़रूरत हो निकाल लिया करना।'

ललिता को पिछले साल की घटनाएं याद आ रही थीं। यात्रा प्रसंग में वह कितने उत्साह के साथ एक एक वस्तु को सजाकर सूटकेश में रखा करती थी। इस बार वही काम शेखर खुद कर रहा था—खुला सूटकेश देखकर यह बात उसे और याद आ रही थी।

ललिता की तरफ से नज़र हटाकर शेखर ने खाँसते हुए एक बार गला साफ किया, फिर कहा—'देखो, सावधानी से रहना, यदि आवश्यकता कोई आ पड़े तो मेरे पिता से पता पूछकर मुझे लिखना।'

इस बार मैं साथ नही जाऊंगी, शेखर भैया को इस बात का पता लग गया है और इसका कारण भी वह जान गये हैं—ललिता को इससे संकोच हो रहा था। सहसा शेखर ने कहा—'अच्छा, जाओ। मैं अपना सामान ठीक कर लेता हूँ। समय हो गया है, एक बार ऑफिस भी हो आना होगा।'

'जाओ, तुम नहाओ। मैं सब ठीक किये देती हूँ'—ललिता ने कहा और सूटकेश के पास बैठ गई।

'फिर तो ठीक ही है'—शेखर ने चाबियों का गुच्छा ललिता की तरफ फेंक दिया। बाहर आकर एक बार वह और लौटा—'किस किस चीज़ की ज़रूरत मुझे होगी, यह तुम्हें याद है न ललिता ?'

ललिता ने उत्तर नहीं दिया। शिर झुकाये वह सूटकेश में रखी चीज़ों को देखने लगी। शेखर ने नीचे जाकर अपनी माँ से पता लगाया, काली की सारी बात सच निकली। गुरुचरण बाबू ने कर्जा पटा दिया है, ललिता की शादी होने वाली है आदि सभी बातें यथार्थ थीं। वह नहाने चला गया।

दो-ढाई घंटा में नहाना और खाना समाप्त करके शेखर जब ऊपर गया दफ़्तर का कपड़ा पहनने तो कमरा के अन्दर जाकर वह विस्मय से अवाक् हो गया! ललिता ने अबतक कुछ किया नहीं था, वह सूटकेश पर शिर रखकर औंधी बैठी थी। शेखर की आहट पाकर उसने शिर उठाया और फिर नज़र नीचे कर ली। उसकी दोनों आँखें रक्तकमल-सी लाल हो गई थीं। किन्तु शेखर ने, मानो उधर ध्यान न दिया हो, कहा—'अभी छोड़ दो ललिता, दुपहर में आकर ठीक कर जाना।' इतना कह कर तैयार होकर वह ऑफिस चला गया। अधिक कुछ कहने का साहस उसे नहीं हुआ।

उस दिन संध्याकाल बैठक में मामा को जब वह चाय देने आई तो उसके पैर ठिठक गये—शेखर बैठा था, वह कल जायेगा, इसीलिए गुरुचरण बाबू से मिलने आया था। ललिता ने नतमुखी होकर दो कटोरियों में चाय उँड़ेली और उन्हें अपने मामा तथा गिरीन्द्र बाबू के समक्ष रख दिया। गिरीन्द्र ने कहा—'ललिता, शेखर बाबू को चाय नहीं दी ?'

'शेखर भैया चाय नहीं पीते'—ललिता ने धीमी आवाज़ में कहा।

गिरीन्द्र और कुछ नहीं बोला, उसे ख्याल आया कि ललिता भी तो चाय नहीं पीती है। शेखर ख़ुद चाय नहीं पीता है, इसीलिए ललिता का भी चाय पीना उसे पसन्द नहीं!

चाय की कटोरी हाथ में लेकर गुरुचरण बाबू ने कहा—'लड़का बी० ए० में पढ़ता है, कुल भी अच्छा, शील भी अच्छा, तो भी हमारे गिरीन्द्र को वह

नापसंद है; खूबसूरत ज़रूर वह नहीं है.....लेकिन मेरी समझ में लड़कों में रूप होना उतना आवश्यक नहीं जितना गुण'...किसी तरह हो, गुरुचरण बाबू शीघ्र से शीघ्र ललिता को ब्याह देना चाहते हैं।

शेखर के साथ गिरीन्द्र का परिचय प्रारम्भिक ही था। शेखर ने गिरीन्द्र की तरफ देखकर कुछ मुसकुराते हुए कहा—'क्यों आपको लड़का नहीं पसन्द आया? पढ़ा-लिखा है, हालत भी अच्छी है, और क्या चाहिए?'

शेखर किन्तु मन ही मन समझ रहा था कि क्यों गिरीन्द्र को वह लड़का पसन्द नहीं है और आगे भी कोई लड़का पसन्द नहीं आयेगा। गिरीन्द्र ने शेखर को उत्तर में कहा कुछ नहीं, केवल उसका चेहरा ज़रा लाल हो गया। शेखर ने यह सब देखा और उठते उठते कहा—'चाचा, कल माँ को लेकर बाहर जा रहा हूँ। सब ठीक-ठाक हो जाने पर मुझे यह शुभ समाचार देना न भूलना।'

गुरुचरण ने कहा—'कैसी बात करते हो शेखर बाबू? तुम्हीं लोग तो हमारे हाथ-पैर हो! और ललिता की माँ (अर्थात् तुम्हारी माँ) के न रहने पर तो कोई भी काम हो नहीं सकता। क्यों ललिता, तुम्हारा क्या ख्याल है?'—गुरुचरण ने नज़र फेरकर देखा तो वह वहाँ नहीं थी।

'ब्याह की बात चलते ही वह भाग गई'—शेखर ने कहा!

गुरुचरण गम्भीर होकर बोले—'भागेगी नहीं! कुछ हो, लज्जा तो उसे है!' कुछ देर चुप रह कर फिर उन्होंने कहा—'भाँजी हमारी लक्ष्मी और सरस्वती की सम्मिलित मूर्ति है। इस प्रकार की लड़की बड़े से बड़े भाग्यवान् को ही मिलती हैं शेखरनाथ!' यह कहते कहते उनके जीर्ण-शीर्ण कृश मुखमंडल पर एक ऐसी स्निग्ध-मधुर आभा छा गई कि गिरीन्द्र और शेखर दोनों ने श्रद्धापूर्वक मन ही मन गुरुचरण बाबू को प्रणाम किया।

सातवाँ परिच्छेद

चाय की गोष्ठी से भागकर ललिता शेखर के यहाँ गई । देदीप्यमान पर छोटे से पैट्रोमैक्स के उज्ज्वल आलोक में सूटकेश खोलकर वह बैठी, गरम कपड़ों को तह करके उसमें रखने लगी। इसी समय शेखर अन्दर आया, ललिता ने शिर उठाकर देखा और फिर नतवदना हो गई—उसकी आकृति से भय और विस्मय दोनों झलक रहे थे।

मुक़द्दमेबाज़ी में सब कुछ हार कर जब कोई घर लौटता है या सुबह का गया आदमी बेकार दर दर भटकने के बाद शाम को जब वापस आता है, उस वक्त उसकी जैसी शकल होती है ठीक वैसा ही मालूम हुआ ललिता को शेखर ! इसी एक घंटे में मानो शेखर की मुखाकृति बदल गई हो ! शेखर ने भारी स्वर में पूछा—'क्या हो रहा है ललिता ?'

'क्या हुआ है शेखर भैया ?'—शेखर के दोनों हाथों को एक हाथ में करके डबडबाई आँखों से ललिता ने जिज्ञासा की, वह उसके बिलकुल नज़दीक आकर खड़ी हो गई थी।

शेखर आयासपूर्वक हँसा—'कहाँ कुछ भी तो नहीं हुआ है !' ललिता के स्पर्श से उसमें कुछ सजीवता फिर आ गई थी। वह एक पलंग पर बैठ गया और ललिता से पूछने लगा—'तुम न बताओ, क्या हो रहा है ?'

ललिता ने कहा—'बड़ा ऑभरकोट सूटकेश में देना भूल गई थी, सो ही रखने आई हूँ।' शेखर ने देखा, ललिता कुछ प्रकृतिस्थ सी होकर कह रही है; वह ध्यानपूर्वक सुनने लगा—'पिछले साल गाड़ी में तुम्हें बहुत तकलीफ हुई थी, कोट तो कई थे लेकिन बड़ा-मोटा कोट एक भी नहीं था। जब मैं लौटी तो नाप देकर यह बड़ा कोट तैयार करवा लिया।'—ललित ने उक्त ऑभरकोट लाकर शेखर के पास रख दिया।

उस कोट को देख-भाल कर शेखर ने कहा—'मुझे तो अभी तक बतलाया ही नहीं !'

ललिता ने मुसकराकर कहा—'तुम ठहरे बाबू लोग ! तुम्हें बताती फिर तुम इतना बड़ा कोट तैयार कराने देते ? इसी से कुछ कहा नहीं, बिलकुल तैयार कराकर रखा था'—फिर उस कोट को ललिता ने सूटकेश में रख दिया। वह यह कहना न भूली कि रास्ते में सर्दी लगे तो निकालकर पहन ज़रूर लेना—भूलना मत।

'अच्छा'—शेखर कुछ देर तक एकटक ललिता की ओर देखता रहा फिर बोला—'ऐसा हो नहीं सकता !'

'क्या नहीं हो सकता ? सर्दी लगने पर भी कोट नहीं पहनोगे ?'—ललिता ने पूछा।

शेखर की अन्यमनस्कता भंग हुई, उसने कहा—'नहीं, वह और बात थी। अच्छा, माँ का सब सामान ठीक हो गया ललिता !'

ललिता ने कहा—'दुपहर को मैंने ही सब ठीक कर दिया था।' इसके बाद एक बार और सब सामान देख-भालकर उसने सूटकेश में ताला लगा दिया। शेखर क्षण भर चुप रह कर मृदु-मधुर स्वर में बोला—'अगले वर्ष कैसे काम चलेगा ?'

ललिता ने आँख उठाकर कहा—'क्यों !'

'क्यों ? सो तो मैं ही जानता हूँ'—शेखर ने अपने फीके चेहरे पर कुछ स्वाभाविकता लाने की चेष्टा करते हुए कहा—'दूसरे के यहाँ गृहलक्ष्मी बनकर जाने से पहले कहाँ कौन वस्तु रखी है, यह मुझे बता जाना नहीं तो समय पर मैं कोई भी वस्तु खोज नहीं पाऊँगा। शौक़ीनी मुझ में काफ़ी है लेकिन प्रबन्ध-शक्ति रत्ती भर भी नहीं। और ये काम नौकर-चाकर के किये नहीं होते। आगे मुझे भी तुम्हारे मामा की तरह एक वस्त्र-एकाभरण एकमेष-एकभूषण बनना पड़ेगा। अच्छा, होगा वही जो होना है; दैव की इच्छा !'

ललिता चाबियों का गुच्छा मेज पर पटक कर भाग गई, शेखर ने गला ऊँचा करके कहा—'सुबह एक बार ज़रूर आना।' ललिता सुनी-अनसुनी

करके पैर बढ़ाती हुई घर पहुँची। वहाँ छत की एक तरफ काली बैठी थी, चाँदनी के प्रकाश में गेंदा के फूलों की छोटी सी ढेर आगे रक्खे वह मालाएँ बना रही थी। ललिता उसके पास जाकर बैठ गई—'ओस में बैठ कर क्या कर रही है काली !'

काली ने गम्भीरता से उत्तर दिया—'आज मेरी लड़की की शादी है।'

'मुझे तो कहा ही नहीं'—ललिता ने कहा।

'पहले से तै नहीं था, अभी बाबूजी ने पंचांग देखकर बतलाया कि आज रात को छोड़ कर इस मास में व्याह का लगन पड़ता ही नहीं। लड़की हो गई है बढ़कर ताड़ ! और रुकना अनुचित होगा, जैसे-तैसे कन्यादान कर ही देना है।...बहन, दो रुपये दो न ! दूल्हा को खिलाने-पिलाने के लिए मेरे पास एक भी पैसा नहीं है।'

'ज़रूरत पड़ती है तो बहन बहन करती है'—मुसकुराती हुई ललिता बोली—'जा मेरी तकिया के नीचे होगा, निकाल लेना। अरे हाँ, गेंदा के फूल से भी कहीं शादी होती है ?'

काली ने संभ्रांत महिला की मुद्रा में कहा—'दूसरे फूल न मिलें तो हो सकता है। बहन, मैंने गेंदा के फूल से ही कितनी लड़कियों का उद्धार किया है। मुझे सब मालूम है।'

काली दूल्हा-दूल्हिन का खाना लाने नीचे गई। ललिता वहाँ बैठे बैठे माला गूँथने लगी। कुछ समय बीत जाने पर काली लौट आई। ललिता से उसने कहा—'और सभी को वर-कन्या देखने के लिए कह आई हूँ केवल शेखर भैया बाकी हैं, उनको भी कह आती हूँ नहीं तो नाराज होंगे।' काली फिर उस मकान में चली गई।

काली बहुत चतुर लड़की है, गृहिणी का यह अभिनय वह कितने स्वाभाविक ढंग से कर रही है ! उसकी पुतली की आज शादी है, सारा ही प्रबन्ध सुनियमित है। उस मकान से लौटकर उसने ललिता से कहा—'एक

माला माँगते हैं शेखर भैया, जाओ बहन, तुम्हीं दे आओ। जल्दी में हूँ, समय हो गया है; इधर का इन्तज़ाम तो मुझे ही करना पड़ेगा।'

'नहीं, मुझसे नहीं हो सकेगा'—ललिता ने शिर नीचे करके कहा।

'अच्छा, तो वह बड़ी माला दो, मैं ही दे आती हूँ'—काली ने हाथ बढ़ाया। ललिता माला उठाकर काली के हाथ में देने ही जा रही थी कि जाने क्या सोचकर ठिठक गई, उसने कहा—'रहने दे, मैं ही दे आती हूँ।'

काली ने गम्भीर होकर कहा—'हाँ बहिनिया, जाओ। मुझे तो आज मरने की भी फ़ुर्सत नहीं है।' उसकी मुखमुद्रा और वचन-विन्यास देखकर ललिता हँस पड़ी—'बूढ़ी मलकाइन कहीं की। सारे संसार की चिन्ता इन्हीं को है!'

ऊपर आकर उसने देखा, शेखर कुछ लिखने में तन्मय है। अन्दर आकर वह शेखर के पीछे खड़ी हो गई, तथापि शेखर को मालूम नहीं हुआ। कुछ देर बाद, चौंका देने की नीयत से, ललिता ने वह माला उसके गले में डाल दी और हँसी रोकती हुई चौकी (तख्तपोश) पर बैठ रही।

'ओह! काली!'—शेखर चौंक गया, गर्दन घुमाकर देखा तो गम्भीरता का अभिनय करते करते वह बोला—'ललिता, क्या किया तुमने यह!'

'किया क्या?'—शेखर की मुखमुद्रा देखकर ललिता को शंका हुई। शेखर ने अपने चेहरे पर गम्भीरता की कृत्रिम रेखाओं को पूर्ववत् रहने दिया और कहा—'ज़रा अपनी काली से जाकर पूछ लो कि आज रात में किसी क्वाँरी का किसी क्वाँर को माला पहनाने का अर्थ भला क्या होता है?'

अब ललिता को होश हुआ। शरम के मारे उसकी कनपटी लाल हो गई!—'ऐसा हो नहीं सकता, कभी नहीं, कभी',—यह कहते कहते वह उस कमरे से बाहर निकल गई। शेखर ने पुकारा—'एक बात है, सुनती जाना।'

शेखर की आवाज़ उसके कानों तक आई अवश्य लेकिन कौन रुकता है! वह सीधे घर जाकर बिस्तरे पर लेट गई, आँखें मूँद कर शेखर की धृष्टता पर विचार करने लगी। पाँच-छः साल हो गये, शेखर के घनिष्ठ सम्पर्क में रहकर ही

ललिता का विकास हुआ है। किन्तु शेखर के मुंह से कभी उसने इस प्रकार की बात नही सुनी। शेखर स्वभाव से ही गंभीर था, एक तो वह कभी ललिता के साथ परिहास करता ही नहीं, अगर कभी करता भी तो वह बहुत साधारण ढंग का ही परिहास होता। ऐसा धृष्टतापूर्ण परिहास शेखर कभी कर सकता है, सपने में भी इस बात की कल्पना इस किशोरी ने नहीं की थी। अनुताप और संकोच के मारे उसे नींद नहीं आई, वह उठकर बैठ गई—कौनसी खास बात थी जो वह कहना चाहते थे? जाना चाहिए कि नहीं, इसी उलझन में पड़ी थी वह। इतने में उस परिवार की नौकरानी आई—'कहाँ हो ललिता दीदी, छोटे बाबू बुलाते हैं।'

बाहर आकर ललिता ने उत्तेजनारहित स्वर में कहा—'आती हूँ, तुम चलो।'

ऊपर आकर ललिता ने देखा, शेखर की लिखाई अभी भी चल रही है। कुछ देर प्रतीक्षा करके वह बोली—'क्यों, क्या काम था?'

लिखते लिखते ही शेखर ने कहा—'नज़दीक आओ, कहता हूँ।'

'नहीं, वहीं से कहो।'

शेखर ने शिष्ट-संभ्रांत की भाँति कहा—'कहो तो, यह क्या तुमने कर डाला?'

ललिता ने रोष भरे स्वर में कहा—'फिर वही बात? इसीलिए बुलवाया है?'

'मेरा दोष नहीं, तुम्हींने किया है'—शेखर ने एकबार ललिता की ओर देखकर कहा।

'किया क्या! कुछ नहीं किया! तुम माला मेरी लौटा दो।'

'इसीलिए तो बुलाया है ललिता नज़दीक आओ, लौटा देता हूँ। आधा काम तुमने कर दिया, ज़रा सा सरक आओ, मैं पूरा कर देता हूँ।'

ललिता चौखट के पास खड़ी थी, वहीं से बोली—'आज क्या [illegible] के चेहरे-तुम्हें! यह परिहास रहने दो, ऐसा करोगे तो कभी फिर इस [illegible] की तरफ खींच रखूंगी। माला लौटा दो।' [illegible] ठों को चूम लिया, कहा

शेखर ने शिर उठाकर मेज की तरफ हाथ [illegible] नहीं होगा, सब अपने आप

'नहीं, तुम वहीं से उछालकर मेरी तरफ फेंक दो।'

शेखर ने माथा हिलाते हुए कहा—'ना, पास आये बिना यह चीज़ तुम्हें मिल नहीं सकती।'

'रक्खो अपनी माला'—ललिता कुपित होकर बाहर चली गई। शेखर ने ज़ोर से कहा—'लेकिन आधा काम बाकी रहा।'

'बाकी रहे बला से!'—वह चली गई। नीचे नहीं जाकर वहीं खुली छत पर, पूरब की ओर, आहिस्ते आहिस्ते चहलक़दमी करने लगी, छन भर बाद रेलिंग (किनारे लगा हुआ लोहे का घिराव) पकड़कर खड़ी हो गई। चाँद आसमान में काफ़ी दूर तक चढ़ आया था और हेमन्त ऋतु की हिम-स्नात चन्द्रिका के पांडुर प्रकाश में दिशाएं आभासित हो रही थीं। ऊपर नील निर्मल आकाश। ललिता ने एकबार शेखर के कमरे की तरफ शिर उठाकर देखा, उसकी आँखें स्त्री-सुलभ शालीनता स्वाभिमान के कारण जल उठीं—पीछे वे डबडबा आईं। वह अब निरी दुधमुंही बच्ची नहीं है कि इन बातों का मतलब न समझे! क्यों शेखर ने ऐसा मर्मवेधी उपहास करने का साहस किया? वह अनाथ और दीन हीन बालिका है, इस बात का स्वयं उसे परिज्ञान है और वह यह भी जानती है कि इसीलिए सब उसे प्यार करते हैं। 'अपना' कहकर उसका कोई नहीं, उसकी ज़िम्मेदारी सच पूछो तो किसी पर नहीं इसीलिए तो गिरींद्र बिलकुल पराया होकर भी उसका उद्धार करने को तैयार हो गया है।..... आँखें बन्द करके वह सोचने लगी कि इस विराट नगरी—कलकत्ता—के मध्य उसके मामा की सामाजिक स्थिति शेखर से कितना नीचे है! और ऐसे ही मामा के गले की फाँस है वह! उधर समान-कुल-शील में समान स्थिति में शेखर के व्याह की बात चल रही है, आज हो या कल, सम्बन्ध होगा ही। उस शादी से कितनी रक़म नवीन राय को हासिल होगी, भुवनेश्वरी के मुंह से ललिता सो भी सुन चुकी है। तब क्यों आज शेखर भैया ने मेरा ऐसा अपमान किया—यही बातें ललिता सोच रही थी, शून्य दृष्टि से सामने के शुभ्र आकाश को एकटक देख रही थी। सहसा चौंककर उसने पीछे की तरफ देखा, शेखर और उसका मूक हास! जो माला उसने शेखर के गले में डाल दी थी वह

अब उसी तरह लौटकर अपने गले में आगई थी ! चाहती तो वह थी रोना परन्तु सारी शक्ति बटोरकर भग्न स्वर में उसने कहा—'क्यों ऐसा किया ?'

'तुमने क्यों किया था !'

'मैंने कुछ नहीं किया था'—ललिता माला को तोड़ना ही चाहती थी कि उसकी दृष्टि शेखर की ओर गई, साहस नहीं हुआ। लेकिन रोती हुई वह बोली—'मेरा अपना कोई नहीं इसी से तुम इस तरह मुझे अपमानित करते हो !'

शेखर अभी तक हँसता ही जा रहा था, परन्तु ललिता की बात सुनकर वह स्तब्ध रह गया—यह तो बच्चों की सी बात नहीं हुई ! अब उसने उलटकर जवाब दिया—'मैं तुम्हें अपमानित करता हूँ या तुम कर रही हो ?'

शेखर ने क्षणभर स्थिर-शान्त रहकर फिर कहा—'ज़रा सोचकर देखो तो सही, अपने आप मालूम हो जायगा। आज-कल तुम बहुत उतावली हो रही थीं, इस आँगन से उस आँगन और उस आँगन से इस आँगन, कलकत्ता छोड़ने से पहले मैंने सिर्फ यही तुम्हारा रोक दिया है।'

ललिता मौन हो रही। शिर झुकाये न जाने क्या सोच रही थी। चन्द्रिका-धवल रजनी के उन विचित्र क्षणों में दो आदमी वहाँ खड़े थे, मूक-निष्पंद ! केवल नीचे से शंख की घन-घोर ध्वनि आ रही थी—काली की लड़की (पुतली) का व्याह हो रहा था।

शेखर ने कहा—'ओस में मत खड़ी रहो नीचे जाओ।'

'जाती हूँ'—ललिता ने स्वाभाविक रीति से काफी झुककर शेखर को प्रणाम किया और उठकर पूछा—'तुम बाहर जाते हो, मेरे लिए क्या आज्ञा है !'

शेखर पहले कुछ मुसकुराया, बाद में दुविधा सी प्रतीत हुई उसके चेहरे-पर। फिर दोनों बाहें बढ़ाकर ललिता को उसने अपने वक्षस्थल की तरफ खींच लिया—स्वयं भी कुछ नतमुख होकर शेखर ने उसके होठों को चूम लिया, कहा 'केवल यही कि आज से तुम्हें कुछ भी बतलाना नहीं होगा, सब अपने आप समझ जाओगी।'

ललिता छिटककर अलग खड़ी हो गई, रोम रोम उसका काँप उठा—'गले में माला डाल दी, इसीलिए यह सब किया तुमने ?'

'नहीं, ऐसी बात नहीं'—शेखर ने कहा—'मैं बहुत दिनों से सोच रहा था किन्तु किसी निर्णय पर अब तक पहुँच नहीं सका था। आज ही इस निर्णय पर पहुँचने का कारण है: आज भली भाँति समझ में आ गया कि तुम्हें छोड़कर मैं जीवित नहीं रह सकता।'

ललिता ने कहा—'यह भी ख्याल किया है कि तुम्हारी अम्मा क्या कहेंगी ? तुम्हारे पिता किस तरह 'अग्निश्च वायुश्च' हो उठेंगे ?—यह नहीं होगा शेख.....'

'पिता को चाहे कितना ही क्रोध क्यों न हो, परन्तु माँ को बड़ी प्रसन्नता होगी। अब तुम भी आबद्ध हो गईं और मैं भी; जाओ, नीचे जाकर माँ को प्रणाम करो।'

आठवां परिच्छेद

तीन चार मास बाद की बात है। एक दिन गुरुचरण अपना उदास चेहरा लिये नवीन राय के घर पहुँचे और बिछी हुई दरी पर बैठने ही जा रहे थे कि गृहपति चिल्ला पड़े—'नहीं नहीं, यहाँ नहीं, उधर उस तख्तपोश पर बैठो; इस असमय में मैं फिर स्नान नहीं कर सकूंगा। क्या सचमुच तुमने अपनी जात-बिरादरी छोड़ दी है?'

गुरुचरण दूर, एक चौकी पर बैठ गये। शिर उनका झुका हुआ था। आज से चार ही दिन पहले वह विधिपूर्वक दीक्षा लेकर ब्रह्मसमाजी बने थे, यह बात नमक-मिर्च मिलाकर नवीन राय जैसे कट्टर हिन्दू को कोई कह गया है—और लोगों में भी इसकी खूब चर्चा है। नवीन राय की आँखों से अंगारे निकल रहे थे लेकिन गुरुचरण मौन और स्तब्ध बने बैठे थे! उन्होंने किसी से बिना पूछे ही यह सब कर लिया था, तब से घर में भी अशांति और विशृंखलता प्रवेश कर गई थी।

नवीन राय ने फिर कुपित स्वर में पूछा—'चुप क्यों हो गुरुचरण! बोलो न बात सच है कि नहीं?'

'सच है'—गुरुचरण ने डबडबाई आँखें ऊपर उठाकर कहा।

'क्यों ऐसा कुकर्म किया? वेतन तो तुम्हें साठ रुपये मासिक मिलते ही हैं, पेट तो नहीं जलता था! तुम.....'

गुस्सा के मारे नवीन राय से ज्यादा बोला तक नहीं जा रहा था।

गुरुचरण ने आँखें पोंछीं और गला साफ किया, फिर बोले—'समझ नहीं रह गई थी, दुख-दुविधाओं की जलन से बचने के लिए फाँसी लगाकर मर जाऊँ या ब्रह्मज्ञानी हो जाऊं, कुछ भी निश्चय नहीं कर सका। आखिर में सोचा—आत्महत्या न करके ब्रह्मसमाज की ही शरण में जाना चाहिए, इसी से ब्रह्मज्ञानी हो गया.....' आँख पोंछते पोंछते गुरुचरण उठकर चले गये।

नवीन राय ने अपने इस दीन प्रतिवेशी को सुनाते हुए गला फाड़कर कहा —'किया तो तुमने खूब ! अपने गले की फाँस समाज के गले में डाल दी; अच्छा जाओ, फिर कभी अपना काला मुँह इधर नहीं दिखाना। जो नये नये बन्धु-बांधव हुए हैं उन्हीं की जूतियां जाकर झाड़ो; लड़कियों का क्या है ? भंगियों और मोचियों के यहाँ जगह उन्हें मिल ही जायगी !'

इतना कहकर घृणा के मारे उधर से उन्होंने अपना मुंह फेर लिया।— उनको बदला लेने की कोई तरकीब ही नहीं सूझ रही थी । गुरुचरण उनकी पकड़ के बिलकुल बाहर चला गया है, फिर कभी उनके चक्रव्यूह में वह आ सकेगा, इस बात की संभावना अब तिलमात्र नहीं रह गई। जब और कुछ नहीं सूझा तो बढ़ई और राज को बुलवाकर छतवाला वह रास्ता, जिससे दोनों परिवारों में आवागमन था, उसी दिन बन्द करवा दिया—जेल की तरह ऊंची दीवार दोनों छतों के दर्म्यान खड़ी हो गई !

अपने प्रवासकाल में शेखर से जब यह नई खबर भुवनेश्वरी ने पाई तो वह बहुत दुखी हुई, यहाँ तक कि रो पड़ी ! उन्होंने लड़के से कहा—'यह उनको किसने पट्टी पढ़ाई होगी शेखर ?'

शेखर सब बात समझ गया था, उसने माँ के प्रश्न का उत्तर दूसरे ढंग से दिया—'आखिर हुआ क्या ? दो-चार दिन बाद तुम भी तो उन्हें जाति-समाज से निकाल देतीं ! इतनी लड़कियों की शादी बेचारे गुरुचरण चाचा कैसे कर पायेंगे ?'

भुवनेश्वरी ने अपनी पतली गर्दन हिलाते हुए कहा—'कोई काम दुनिया में रुका नहीं रहता शेखर ! और सिर्फ इसीलिए पहले से ही जातिभ्रष्ट हो जाना कोई विवेक की बात नहीं। भगवान ने जिन्हें इस संसार में भेजा है, उनका भार हमारे तुम्हारे ऊपर थोड़े ही है ?···' भुवनेश्वरी ने डबडबाई आँखों से कहा—'अगर मैं अपनी ललिता बेटी को साथ लिये आती तो उसका कोई न कोई एक ठिकाना लगा देती; अवश्य लगा देती। मैं नहीं जानती थी कि गुरुचरण ने इसी नीयत से उसे हमारे साथ आने नहीं दिया। मेरी तो यही धारणा थी कि सचमुच ही कहीं उसकी शादी की बात चल रही है।'

शेखर ने माँ के मुंह की ओर देखकर, लज्जा का अभिनय करते हुए, कहा—'तो लौट न चलो माँ, घर जाकर उसकी एक व्यवस्था कर दो। वह तो ब्राह्म नहीं हुई है, मामा के पास अनाथ अ-शरण होने के कारण ही वह रह रही है, और तो कोई कारण नहीं!'

भुवनेश्वरी बोली—'सो हो सकता है, लेकिन तुम्हारे बाप का स्वभाव कुछ और किस्म का है। वह कभी राजी नहीं होंगे, उस परिवार से मिलना-जुलना तक हमारा वह रोक देंगे।'

शेखर को स्वयं भी यही शंका थी, वह चुप हो गया।

अब प्रवास में एक क्षण भी उसका मन नहीं लगता था। दो-तीन दिन तक मुंह लटकाये इधर उधर चक्कर काटता रहा लेकिन चारों तरफ उसे सूनापन ही सूनापन नाचता नज़र आ रहा था। एक रोज़ शाम को शेखर ने माँ से आकर कहा—'चलो कलकत्ते लौट चलें, यहाँ मन नहीं लगता है।'

भुवनेश्वरी भी सहमत हो गईं—'हाँ बेटा, मुझे भी अच्छा नहीं लगता।'

दोनों घर लौट आये। उन्होंने देखा, छतवाला रास्ता बन्द कर दिया गया है। बीच में प्राचीर (बड़ी दीवार) पड़ गया है। गुरुचरण की चर्चा तक गृहपति को असह्य है। यह बात माँ और बेटा दोनों को, बिना किसी के कहे, मालूम हो गई। रात में जब खा रहा था तो माँ ने कहा—'वे गिरीद्र बाबू के साथ ही ललिता को व्याह देना चाहते हैं, मैं पहले ही सब समझ गई थी।'

'किसने कहा'—शेखर नतमुखी मुद्रा में ही बोला।

'ललिता की मामी ने। दुपहर को तुम्हारे पिता जब सो गये तो मैं स्वयं गुरुचरण बाबू के घर गई थी। काली की माँ ने रो रो कर आँख-मुंह सुजा लिया, मेरे देखते देखते।'—कुछ देर मौन रहकर भुवनेश्वरी ने आँचल से आँखें पोंछी और उंगलियों से कपार ठोकती हुई बोलीं—'इसका लिखा कौन मेट सकता है शेखर? और चाहे जो हो, गिरींद्र सुपात्र लड़का है, ललिता को कोई कष्ट न होगा।'

शेखर निःशक था, शिर झुकाये खा तो वह रहा था किन्तु थाली की दाल-भात और कटोरियों की तरकारियों को छू छूकर उसकी उँगलियां जितना बिखेर रही थीं उतना कौर बना कर मुंह में डाल नहीं रही थीं। वह पेट भर खा नहीं सका, जाकर सो रहा।

दूसरे दिन सैर कर आने की नीयत से वह ज़रा बाहर निकला। गुरुचरण की बैठक में चाय-गोष्ठी लगी थी, बात-चीत और हँसी की ध्वनि आ रही थी। उससे उत्साह का और आमोद का आभास आता था। यह आवाज़ सुनकर शेखर ठिठक गया और कुछ सोचने लगा, फिर वह बैठक की तरफ बढ़ा। उसके आगे जाने पर एकाएक बात-चीत रुक गई और वातावरण में परिवर्तन-सा परिलक्षित हुआ।

शेखर और उसकी माँ आ गये हैं, यह बात ललिता ही जानती थी। आज बैठक में गिरींद्र और एक अन्य तरुण भी थे, वह विस्मित होकर शेखर की ओर देखने लगे। गिरींद्र गंभीर होकर दीवार की तरफ ताक रहा था। हल्ला-गुल्ला मचाकर गप में सबसे अधिक भाग लेने वाले थे गुरुचरण स्वयं किन्तु उनका मुंह भी फीका पड़ गया। मामा के पास बैठी ललिता तब चाय ठीक कर रही थी, उसने एक बार शिर उठाकर देखा और फिर तत्काल नतमुखी हो गई।

शेखर ने निकट आकर गुरुचरण के पैर छुए, उन्होंने अस्पष्ट आशीर्वाद दिया। फिर चुप। शेखर भी तख्तपोश पर बैठ गया और मुसकुराता हुआ बोला—'क्यों, यह चुप्पी कब तक रहेगी, अभी तो आप लोग हँस-बोल रहे थे चाचा?'

सबको अचल अडोल देखकर उसने स्वयं ही बात शुरू की—'हम कल सुबह की गाड़ी से आये, माँ अब अच्छी हो गई हैं' आदि आदि... और उस अपरिचित तरुण के मुँह की ओर उसकी निगाह जा बैठी। गुरुचरण ने अब तक अपने को सँभाल लिया था। उक्त युवक का परिचय देते हुए वह बोले—'आप हमारे गिरींद्र के बाल-मित्र हैं, एक ही जगह दोनों के घर पड़ते हैं,

खेलना-कूदना, लिखना-पढ़ना सब साथ ही हुआ है। श्यामबाजार में रहते हैं, फिर भी जब से परिचय हुआ है तब से बहुधा इधर आ जाया करते हैं, अत्यन्त साधु प्रकृति के हैं।'

शेखर ने सिर झुकाकर मन ही मन दुहराया—अत्यन्त साधु प्रकृति के हैं। कुछ क्षण के बाद उसने पूछा—'और सब तो ठीक है चाचा ?'

गुरुचरण ने उत्तर नहीं दिया, आँखें नीचे किये रहे। शेखर उठकर जाने को हुआ तो वेदना विगलित स्वर में वह बोले—'कभी कभी आते रहना भैया ! बात तो सब तुमने सुनी ही होगी ?'

'जी हाँ, कुछ मालूम हुआ है।'—शेखर चाची से मिलने अन्दर गया।

उसके बाद ही अन्दर से रोने की आवाज़ आई। बाहर बैठे गुरुचरण आँसू पोंछने लगे। गिरींद्र अपराधी की भूमिका में खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया, उसकी आँखें क्षितिज की ओर पहुँच गई थीं। ललिता पहले ही उठ चुकी थी। थोड़ी देर बाद शेखर रसोई घर से आँगन में होता हुआ बरामदे के आगे सीढ़ियों से उतर कर निकलने लगा कि अंधकाराच्छन्न किवाड़ के आड़ से कोई छाया झाँकती हुई प्रतीत हुई—और कोई नहीं, वह ललिता थी। शेखर खड़ा हो गया। एक विवाहिता बंगमहिला की भाँति धरती तक झुक कर उसने शेखर के पैर छुए और उठकर बिलकुल उसके वक्षस्थल के निकट हो गई, क्षण भर न जाने किस आशा से ललिता शेखर के मुंह की ओर ताकती रही फिर ज़रा हटकर एक तरफ खड़ी हुई—'पत्र का उत्तर क्यों नहीं दिया ?'

'कहाँ ! मुझे तो चिट्ठी ही नहीं मिली ! क्या लिखा था ?'

'बहुत सी बातें लिखी थीं··· खैर, सब सुन तो लिया है ? अब क्या सलाह देते हो ?'

'सलाह ! मेरी सलाह ! मेरी सलाह क्या होगी ?'

ललिता शंकित होकर शेखर का चेहरा देखती रही, फिर बोली—'क्यों ! तुम्हारी सलाह नहीं, हुक्म चाहिए'। फिर तुम ऐसा क्यों कहते हो ?'

'हुक्म ! हुक्म मैं किस पर चलाऊं ?'

'मुझपर, और किस पर ?'

शेखर ने करुण-गंभीर स्वर में कहा—'तुम पर ! और तुम उस हुक्म को भला मानने ही क्यों लगी !'

इस बार ललिता घबड़ा गई, ज़रा और नज़दीक आकर विकलतापूर्वक उसने कहा—'तुम खिलवाड़ कर रहे हो ? चिन्ता के मारे रात को मुझे नींद नहीं आती और तुम्हें सूझता है तमाशा ! पैरों पड़ती हूँ, मुझे कुछ बतलाते जाओ।'

'डरती हो ?'

'अच्छा ! डर नहीं तो और क्या ? यहाँ न तुम थे न अम्मा (भुवनेश्वरी) इधर बीच में मामा ने क्या कुछ कर डाला ! और अम्मा ने अगर मुझे स्वीकार नहीं किया तो ?'

'यह सच है, माँ तुम्हें अपना नहीं सकेंगी। तुम्हारे मामा ने बहुतों के रुपये ले रक्खे हैं, सो उन्हें मालूम है। और दूसरी बात यह भी कि अब तुम्हारा परिवार है ब्रह्मसमाजी और हमारा सनातनी !'

'ललिता बहन, माँ बुलाती हैं'—काली ने इसी समय पुकारा।

'अच्छा, आ रही हूँ'—ललिता ने काली को जवाब दिया और फिर इधर शेखर को कहने लगी—'मामा भले कुछ हो जाएं, मैं तो वही हूँ जो तुम हो, अम्मा यदि तुम्हें घर में रख सकती हैं तो मुझे भी वह छोड़ नहीं सकतीं। और, तुम गिरींद्र बाबू के रुपये की बात कर रहे हो ? मैं सब उन्हें लौटा दूंगी। और ऋण आगे-पीछे पटता रहेगा।'

शेखर ने पूछा—'इतने रुपये तुम पाओगी कहाँ ?'

ललिता ने शेखर से आँखें मिलाईं, फिर कहा—'जानते नहीं। स्त्रियाँ जहाँ से रुपये पाती हैं मैं भी वहीं से पाऊंगी।'

अभी तक शेखर ऊपर से ठंडा होकर बातें कर रहा था, अब उबल पड़ा—'लेकिन मामा ने तुम्हें बेच जो डाला है ! कुछ मालूम भी है ?'

अंधेरा था, ललिता इसीलिए शेखर की मुखमुद्रा नहीं देख पाई किन्तु परिवर्तित कंठ-स्वर से उसने शेखर का मनोभाव कुछ न कुछ ताड़ लिया। उसने दृढ़तापूर्वक कहा—'मेरे मामा जैसा सुशील, सज्जन और कहाँ है ? ऐसे आदमी पर तुम इतना जघन्य आक्षेप स्वप्न में भी न करना। उनकी बेदना से तुम भले ही अनभिज्ञ रहो, किन्तु संसार अनभिज्ञ नहीं है।'.....फिर कुछ रुककर सूखे गले को उसने तर करने की कोशिश की—'दूसरी बात यह है कि रुपया उन्होंने मेरे विवाह के बाद लिया है, मुझे बेच देने का कोई अधिकार उन्हें नहीं है और उन्होंने मुझे बेचा भी नहीं है। यह अधिकार सिर्फ़ तुम्हें है, तुम रुपयों के डर से मुझे बिकने दे सकते हो'.....उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही ललिता मामी के पास चली गई।

नवाँ परिच्छेद

उस रात बहुत देर तक शेखर निरुद्देश्य सड़कों पर भटकता रहा, घर लौटते दश बज गये थे। वह सोच रहा था—कल की छोकरी! इतना कुछ कैसे सीख गई? बेहया की तरह ऐसी बातें कैसे ललिता के मुँह से निकल सकीं! आज सचमुच वह ललिता के व्यवहार से क्षुब्ध हो उठा था, परन्तु यदि थोड़ा शान्तचित्त होकर सोचता तो उसे भली भाँति मालूम हो जाता कि क्षोभ का कारण ललिता का व्यवहार नहीं स्वयं वह आप है।

पिछले कुछ मासों से वह प्रवास में था, अतः एकाकी ही दुख-सुख की कल्पनाओं में अपने को उलझाता रहा है और इसीलिए हानि-लाभ को भी अब कल्पना की ही दृष्टि से देखने लगा था। किन्तु आज वास्तविकता से उसे टकराना पड़ा। ललिता का उसके भावी जीवन में क्या स्थान होगा, यह निराकार ग्रन्थि-बन्धन कितना दृढ़ है, इस सबसे अपने को अलग कर लेना—दूर हटा लेना उसके लिए कितना असम्भव है—यही बातें बिस्तरा पर पड़े पड़े वह सोच रहा था। ललिता बचपन से ही उसकी दुनिया में, उसके परिवार में सम्मिलित है। वह सर्वसाधारण के स्नेह की पात्र थी। शेखर ने कभी उसे माँ-बाप भाई-बहन की परिधि में आबद्ध करके नहीं देखा था। ललिता को पाना प्रायः असम्भव है, माता-पिता इस विवाह की सम्मति नहीं करेंगे। वह किसी और की हो जायगी.....इस प्रकार की दुश्चिन्ता शेखर को बराबर होती रहती थी, इसीलिए कलकत्ता से बाहर जाने के पहले ही उस रात को जान-बूझकर ललिता के गले में उसने माला डाल दी थी; शास्त्रीय रुकावटों का मुँह बाँध दिया था।

प्रवास में जब उसने सुना, गुरुचरण ने अपना धर्म-परिवर्तन कर लिया है, तो उसे बेचैनी हुई थी। रात-दिन यही एकमात्र चिन्ता थी कि ललिता

से हाथ न धोना पड़े तब केवल भावना की यही दिशा उसे ज्ञात थी। किन्तु आज ललिता ने साफ साफ जो कुछ कहा था उससे शेखर की भावधारा उल्टी दिशा में मुड़ पड़ी—पहले चिन्ता थी ललिता को नहीं पाने की अब चिन्ता हुई पीछा छुड़ाने की !

श्यामबाजार वालों के यहाँ शेखर के व्याह की जो बात चल रही थी वह टूट चुकी थी क्योंकि वे लोग ज्यादा रुपया देना नहीं चाहते थे। भुवनेश्वरी को लड़की नहीं पसन्द थी। शेखर को छुटकारा मिल गया था सही लेकिन नवीन राय अब भी किसी तगड़े यजमान की टोह में थे, दश-बीस हज़ार रुपये की बात भला उन्हे भूलती !

क्या किया जाय—शेखर को कुछ सूझ नहीं रहा था। उस रात की माला वाली घटना यह जटिल रूप धारण करेगी और ललिता का हृदय विश्वास कर बैठेगा कि हमारा व्याह हो चुका, वह अब किसी भी प्रकार बदल नहीं सकता—इतनी दूर तक शेखर ने नहीं सोचा था। यद्यपि उस क्षण में शेखर ने कहा था, जो कुछ हुआ है उसे न तुम अस्वीकार कर सकती ललिता ! और न मैं अस्वीकार कर सकता हूँ। परन्तु उस समय में न तो शेखर में शक्ति थी और न उसे अवसर ही था कि इतना सोचता।

चन्द्रमा मध्य आकाश में आ चुके थे। मधुर-उज्ज्वल-शीत आलोक से सचर-अचर जगत् धवलित हो रहा था। गले में आन्दोलित हो रही थी लम्बमान माला। प्रेयसी के स्पंदनशील उर को अपने वक्षस्थल से सटा लेने का पहला ही अनुभव था। जिसको कविजन 'अधर-सुधा' कहते आये हैं उसके पीने की तीव्र मादकता थी।—ऐसा था वह क्षण ! उस समय स्वार्थ और सांसारिक हानि-लाभ सामने नहीं थे। अर्थलोलुप पिता की भीमाकार प्रतिमा आँखों में नाच नहीं रही थी। सोचा था शेखर ने, माँ ललिता को बहुत प्यार करती हैं, उन्हें मना लेना आसान होगा। भैया की सिफारिश करने पर वह पिता को नरम कर देंगे। किसी प्रकार यह काम (व्याह) हो ही जायगा। और दूसरी बात यह भी थी कि उन दिनों गुरुचरण भी ऐसे विचित्र और

विकीर्ण नहीं हो गये थे. शेखर का मनोरथ इस प्रकार छिन्न-भिन्न नहीं हुआ था। आज तो विधाता बिल्कुल प्रतिकूल हो गये हैं।

यथार्थता यह थी कि अब शेखर की किसी प्रकार की चिन्ता बेकार थी। उसको निश्चय हो गया था कि पिता को समझाना तो दूर की बात रही माँ से भी इस विषय में कुछ आशा करना व्यर्थ है। यह बात तक अब ज़बान पर नहीं लाई जा सकती।

शेखर लम्बी साँस लेकर अस्फुट रूप में अपने आप बोला—'दूसरा क्या रास्ता हो सकता है! ललिता को वह अच्छी तरह पहचानता था, उसके निर्माण में शेखर का हाथ था। एक बार जिसे वह अपना धर्म समझ कर अपना चुकी उसे किसी भी रूप में कभी भी वह छोड़ेगी नहीं। वह अब अपने को शेखर की अर्धाङ्गिनी समझती है तभी तो आज संध्याकाल उसके वक्ष के अति निकट आकर मुँह के पास मुँह करके खड़ी हुई थी।

गिरीन्द्र के साथ उसके ब्याह की बातचीत चल अवश्य रही है किन्तु कौन उसे बाध्य कर सकेगा! और, वह क्या अब चुप रहेगी? सारा संसार इस बात को जान जायगा!—शेखर की आँखों से अंगारे निकलने लगे। बात एक भी झूठ नहीं, सभी सच है। केवल माला ही अदल-बदल कर वह उस समय सन्तुष्ट नहीं हुआ, ललिता को अपने वक्षस्थल की ओर खींच कर उसके होठों को चूम भी लिया था। उसने आपत्ति नहीं की थी, उचित समझ करके ही नहीं की थी—शेखर का अधिकार है, यह समझ कर ही उसने यह सब चुपचाप स्वीकार कर लिया था। इन अभियोगों का समाधान वह अब किसके सामने किस तरह करेगा?

बिना माता-पिता की सम्मति के ललिता के साथ उसका विवाह हो नहीं सकता, सो निश्चय है किन्तु गिरीन्द्र के साथ उसका विवाह अमुक कारण से नहीं हुआ, यह बात ज़ाहिर हो जाने के बाद वह कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रहेगा?

दशवां परिच्छेद

असंभव समझकर शेखर ने ललिता की आशा एकदम छोड़ दी । पहले कुछ दिन तक तो मन ही मन बहुत डरता रहा—अगर अचानक ललिता सामने आ जाय, सारी पोल खोल दे, दुनिया से कैफ़ियत देनी होगी। लेकिन कोई उससे कैफ़ियत तलब करने नहीं आया। कोई भी बात इस सम्बन्ध में सुनी नहीं गई। उस घर से इस घर अभियोग लगाने भी कोई नहीं आया। शेखर के कमरे के सामने जो छत थी उस पर खड़े होने से गुरुचरण के मकान की छत पर का सब कुछ देखा जा सकता था। कदाचित् ललिता दिखाई पड़े, इस भय से अपनी छत पर खड़ा होना ही उसने छोड़ दिया। जब एक मास बीत गया तो मन ही मन शेखर ने कहा—चाहे कुछ भी हो, स्त्रियों ने अभी तक अपनी स्वाभाविक शालीनता और लज्जाशीलता नहीं छोड़ी है। इस प्रकार की बातें उनके मुंह से किसी भी रूप में निकल नहीं सकतीं.....शेखर ने सुन रक्खा था कि छाती फट जाने पर भी स्त्रियां मुंह नहीं खोलतीं, अब उसको इस बात पर विश्वास हुआ। उसने विधाता को इसलिए धन्यवाद दिया कि इस प्रकार की कमज़ोरी स्त्रियों में उन्होंने डाल दी है .....फिर भी वह अशांत क्यों रहता है ? जब से अपने को भय की परिधि से बाहर समझने लगा है तभी से एक प्रकार की अपूर्व व्यथा से उसका मस्तिष्क झनझना उठा है ! रह रहकर उसका हृदय वेदना, निराशा और आशंका से काँप क्यों उठता है ?.....ललिता मुंह नहीं खोलेगी, किसी और के हाथ पड़ेगी क्या तब तक मौन रहेगी ? ..... फिर शेखर ने ख्याल किया, ललिता की शादी हो चुकी है, वह अपने पति के पास रहने लगी है !—इससे उसके भीतर बाहर मानो आग लग गई ! क्यों भला ?

पहले वह शाम को छत पर ही चहलकदमी (चंक्रमण, जंघाविहार) कर लेता था, घूमने बाहर नहीं जाता था। आज भी टहल रहा था। लेकिन एक

दिन भी उसने सामने वाली छत पर किसी को नहीं देखा। एकबार काली दीख पड़ी थी, आँखें मिलते ही वह नीचे उतर गई, शेखर सोचता ही रह गया कि उसे बुलाए या नहीं। वह समझ गया, उसके पिता ने जो रास्ता बन्द कर दिया है उसका मतलब यह अबोध काली भी जान गई है।

एक मास और भी बीता।

एक दिन भुवनेश्वरी ऊपर आईं, उन्होंने शेखर से पूछा—'इस बीच में बेटा, तुमने ललिता को भी देखा है ?'

शेखर ने गर्दन हिला कर कहा—'नहीं माँ, क्यों पूछती हो ?'

माँ ने कहा—'दो मास के बाद कल उसे छत पर देखा तो बुलाया, मेरी लड़की एकदम बदल गई है। फीका-सूखा चेहरा, मानों कितना पुराना रोग हो ! मानों कितनी ज्यादा उम्र हो ! इतनी गंभीर ! कौन कहेगा कि चौदह साल की लड़की होगी... ..भुवनेश्वरी की आँखें छलछला आईं, हाथ से ही उन्होंने आँख पोछी फिर गला साफ करके बोलीं .....कपड़ा मैला था, पूछा, लली, तुम्हारे कपड़े नहीं है ? बोली, हाँ है तो.....लेकिन, भैया, मुझे तो विश्वास नहीं हुआ ! कभी उसने मामा के दिये कपड़े नहीं पहने। मैं ही देती थी... ..' भुवनेश्वरी से और नहीं बोला गया, वह आँख पोंछने लगीं। ललिता को सचमुच ही वह अपनी बेटी की तरह प्यार करती थीं।

शेखर ने कुछ कहा नहीं, पैर के नाखूनों की ओर देखता रहा।

कुछ क्षण के बाद भुवनेश्वरी फिर बोलीं—'और किसी से ललिता कुछ कहती भी तो नहीं थी, किसी से कुछ चाहती भी नहीं थी। असमय कुसमय जब उसे भूख लगती तो भी अपने माना के यहाँ किसी से कुछ नहीं कहकर मेरे पास चली आती--आगे-पीछे चक्कर काटने लगती, मैं उसका चेहरा देख कर ही समझ जाती। शेखर, मेरा ख्याल है कि अब उसका सूखा-फीका चेहरा देखकर न कोई कुछ समझता है, न पूछता है। मुझे सिर्फ माँ कहकर वह बुलाती भर नहीं थी, माँ की तरह मुझ में स्नेह भी था उसका।'

शेखर को साहस नहीं हुआ कि माँ की तरफ देखे फिर भी वह बोला—'पूछ कर दे क्यों न दिया जो उसे चाहिए था, माँ, ठीक ही तो होता।'

'वह लेती कैसे ? तुम्हारे बाप ने जाने आने का रास्ता तक बन्द कर दिया है ! या, मैं ही उसे किस मुंह से बुलाती ? गुरुचरण बाबू ने जले हुए दिल से ही यह सब किया है, सुख से नहीं। हम लोग 'अपना' समझते तो मामूली प्रायश्चित्त करा कर फिर अपने अन्दर ले न लेते ? सो तो किया नहीं गया, हाँ, 'दूर दूर' करके हमने उन्हें और ज्यादा दूर कर दिया ! तक़ाज़ा से तंग आकर ही उन्होंने धर्मा' तर ग्रहण का विचार किया होगा—तुम्हारे पिता ने हद कर दी, जब देखो तभी तक़ाज़ा ! तक़ाज़ा ! आदमी को जब तंग किया जाता है तो वह जो न सो कर गुज़रता है। मैं तो कहती हूँ, गुरुचरण बाबू ने अच्छा ही किया। वह जो गिरींद्र है सो पराया होकर भी उनके लिए हमारी अपेक्षा अधिक 'अपना' है। उसके साथ रहने पर ललिता को रत्ती भर भी कष्ट नहीं होगा। कहते हैं, अगले मास ही शादी होगी।'

सहसा शेखर ने माँ की तरफ देखकर पूछा—'अगले ही मास में होगी ?'

'सुनती तो हूँ।'

शेखर ने और कुछ नहीं कहा।

भुवनेश्वरी ने फिर कहा—'ललिता से सुना, उसके मामा का स्वास्थ्य आज-कल बहुत बिगड़ गया है। अब वह बचेंगे नहीं। बेचारे की तबियत खराब तिस पर रोज़ घर में रोना-पीटना, एक मिनट भी उनके यहाँ चैन नहीं।'

शेखर चुपचाप सुनता था, अन्त तक चुप रहा। माँ जब चली गईं तो बिस्तरे पर आकर लेट गया—ध्यान में और कोई नहीं, ललिता ही थी।

यह गली इतनी सँकड़ी थी कि दो गाड़ियाँ समानांतर होकर जा-आ नहीं सकती थीं। एक गाड़ी एक ओर खूब सटकर जब तक खड़ी न हो ले तब तक दूसरी गुज़र ही नहीं सकती थी। दश दिन बाद शेखर की गाड़ी आँफिस से आकर इस गली में रुक गई, आगे दूसरी गाड़ी खड़ी थी। उतर कर उसने पता लगाया तो मालूम पड़ा कि डाक्टर आये हैं गुरुचरण बाबू को देखने।

वह कुछ दिन पहले ही माँ से सुन चुका था कि गुरुचरण अस्वस्थ हैं, इसीलिए आज सीधे घर न जाकर उसने अपने उपेक्षित और रुग्ण प्रतिवेशी को

देखने का निश्चय किया और मकान के जिस भाग में गुरुचरण सोते थे, वहीं गया। गुरुचरण मृतप्राय विस्तरे पर लेटे थे। एक ओर ललिता और गिरींद्र और सामने रोगपरीक्षा में निमग्न डाक्टर।

गुरुचरण ने संकेत से बैठने कहा। ललिता ने माथे का कपड़ा जरा और नीचे सरकाकर मुंह फेर लिया।

डाक्टर मुहल्ले का आदमी था, शेखर से उसकी जान-पहचान थी। रोगी की परीक्षा करके उसने औषध और पथ्य की व्यवस्था की फिर शेखर को साथ लेकर बाहर आया। गिरींद्र जब फीस देने आया तो उसको डाक्टर ने सावधान कर दिया कि स्थिति यद्यपि अभी भी उतनी भयावह नहीं है तथापि वायु-परिवर्तन के लिए रोगी को किसी दूर के स्थान में ले जाना होगा।

डाक्टर के चले जाने पर दोनों फिर गुरुचरण के पास लौट आये। ललिता ने इशारा से गिरींद्र को बुला लिया और एक ओर ले जाकर बिद बिद करके न जाने क्या क्या बातें उनमें होने लगीं। शेखर हतप्रभ होकर गुरुचरण के सामने वाली चौकी पर बैठ रहा, आँखें उसकी रोगी की ओर थीं। गुरुचरण बाबू तब तक करवट बदल कर सो चुके थे, दुबारा शेखर के आने का पता उन्हें नहीं लगा।

कुछ क्षण चुपचाप अकेला वह बैठा फिर उठ गया। तब तक ललिता और गिरींद्र की एकांतवार्ता चल ही रही थी। शेखर को न तो किसी ने बैठने कहा, न आने! किसी ने एक शब्द भी उसको नहीं कहा, न पूछा।

आज वह भली भाँति यह समझ गया कि ललिता ने दुर्वह उत्तरदायित्व से उसे सदा के लिये मुक्त कर दिया। अब वह निश्चिन्त होकर सो सकता है, हलकी सांसें ले सकता है। अब ललिता उसके पीछे नहीं पड़ेगी·····घर आकर कपड़े उतारे और कोच पर बैठ गया। सोचने लगा—मैं अपनी आँखों देख आया हूँ, गिरींद्र ही उन लोगों का परम बन्धु है, सभी का भरोसा और ललिता का भावी सहारा सब कुछ गिरींद्र ही है·····मैं कोई नहीं! ऐसी मुसी-

व्रत के दिनों में भी ललिता अब मेरे साथ सलाह-मशविरा नहीं करती ! यह तो दूर रहा, आज उसने एक शब्द भी न पूछा न सुना—इतना अपमान !

ओह !—शेखर कोच पर से उठकर पलंग पर 'धम्म' से पड़ गया····· ललिता ने मुझे देखकर सिर का कपड़ा ज़रा और नीचे सरका लिया ! मैं आज 'पराया' और अपरिचित हो गया ! और मेरे समक्ष ही गिरींद्र को बुलाकर एक ओर ले गई ! ओह, कैसी कानाफूसी ? कैसे इशारे ! कैसा सलाह-मशविरा ! बेशर्मी की हद होती है ! और, एक दिन वह था कि मेरी अभिभावकता में आप थिएटर जाते जाते रुक गईं !

तब भी शेखर ने यह सोचने की कोशिश की कि हो सकता है गुप्त विवाह की बात याद करके ही वह शायद सीमंत को ढँकना चाहती होगी...नहीं, ऐसा नहीं हो सकता; अगर उसी बात पर ललिता अब तक टिकी होती तो क्या किसी युक्ति से वह शेखर को यदा-कदा कुछ पूछ-पाछ न लेती ?

इतने में बाहर माँ की आवाज़ सुनाई दी—'शाम हो गई शेखर, उठो, नाश्ता नहीं करना है ?'

शेखर घबड़ा कर उठा और मुंह झुकाये नीचे उतर गया, उसे डर था कि कहीं माँ मेरे चेहरे का यह फीकापन न देख लें ।

पिछले कई दिनों से तरह-तरह की बातें विभिन्न रूपों में उसके अन्दर आ-जा रही थीं । सिर्फ़ एक ही बात ऐसी थी जिसकी ओर उसका ध्यान नहीं जा पाता था, उसने यह कभी नहीं विचारा कि वास्तव में इन घटनाओं के मूल में सबसे अधिक किसका हाथ रहा है, इस काण्ड में सबसे अधिक किसका दोष है ? आशा का एक भी शब्द आज तक ललिता को उसने नहीं कहा और न उसे ही कहने का अवसर दिया । उलटे वह स्वयं ही अब तक काठ बना हुआ था कि ललिता कदाचित् सारा रहस्य प्रकट न कर दे, कदाचित् वह पत्नीत्व का दावा न करे ! तो भी सभी अपराधों का बोझ वह ललिता के ही सिर पर डालता था और ख़ुद सोचता रहता था । हिंसा, क्रोध, अभिमान और अपमान की ज्वालाओं में झुलस झुलस कर वह जला करता था । प्रायः

दुनिया में बहुत से आदमी स्त्रियों के सम्बन्ध में ऐसा ही एकांगी विचार करते हैं और इसी तरह जलते रहते हैं।

इसी जलन में शेखर के सात दिन कट गये थे। आज भी शाम के बाद अपने कमरे में आकर वह बैठ गया और सुलगने लगा कि बाहर किसी के पैरों की आहट आई। उसने सिर उठाकर देखा तो उसका दिल धक् से रह गया! काली का हाथ पकड़े ललिता अन्दर आई और नीचे बिछे हुए कार्पेट पर शान्त-स्थिर भाव से बैठ गई। काली बोली—'शेखर भैया, हम तुम्हें प्रणाम करने आये हैं, कल हमें यहाँ से चली जाना है।'

शेखर विस्मय-विमुग्ध केवल उन्हें देख रहा था।

काली फिर बोली—'हमने बहुत से अपराध किये हैं, शेखर भैया, उन्हें क्षमा कर देना।'

शेखर भली भाँति समझता था, इसमें से एक बात भी काली की अपनी नहीं, सब उसे सिखाया गया है, वह कह भर रही है। उसने पूछा—'कल कहाँ जा रही हो तुम लोग?'

'बाबूजी को लेकर हम सभी मुंगेर जा रहे हैं, वहाँ गिरीन बाबू का मकान है। बाबूजी के अच्छे हो जाने पर भी अब लौटेंगे नहीं। डाक्टर कहता था, यह देश बाबूजी के स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं है।'

'अब कैसे हैं तुम्हारे बाबूजी?'—शेखर ने पूछा।

'कुछ अच्छे हैं'—इतना कह कर काली ने कुछ नये कपड़े निकाल कर दिखलाये—'देखो, शेखर भैया, बड़ी चाची (शेखर की माँ) ने दिये हैं!'

ललिता अभी तक चुप थी, अब उठकर वह टेबुल के पास गई और उस पर एक चाबी रख कर बोली—'आलमारी की यह चाबी मेरे ही पास रह गई थी'—फिर मुसकराकर कहा—'किन्तु उसमें अब रुपये-पैसे नहीं हैं, सब मैं खरच कर चुकी हूँ।'

शेखर मौन ही था।

'चलो बहन, रात होती है'—काली ने ललिता का हाथ पकड़ते हुए कहा।

ललिता के कुछ कहने से पहले ही शेखर व्यग्रता-पूर्वक बोल उठा—'नीचे से पान तो ले आ काली।'

ललिता ने हाथ दबाकर काली से कहा—'तू बैठ भला, मैं ही ला देती हूँ।'

थोड़ी देर में वह पान लेकर लौट आई और पान काली के हाथ में थमा दिया—'दे आ।'

शेखर हाथ में पान लिए अडिग अडोल निस्तब्ध बैठा रहा।

'चली भैया'—काली ने नज़दीक आकर शेखर के पैर छुए। ललिता जहाँ बैठी थी, वहीं से भूमिष्ठ होकर (धरती तक शीश झुकाकर) प्रणाम किया। इसके बाद दोनों चली गईं।

शेखर उनका औचित्य अनौचित्य और आत्माभिमान आदि बातों पर विचार करता हुआ बैठा रहा। उसके मुँह की कान्ति फीकी हो गई थी और विवेकशक्ति आहत। ललिता आई, जो कुछ कहना था कह कर और विदा माँग कर चली भी गई। किन्तु वह अपने मन की न कह सका, उसको मानो कुछ कहना ही न था! ललिता जान-बूझ कर ही काली को साथ लाई थी, वह नहीं चाहती थी कि कोई इधर-उधर की बात उठे। शेखर यह सब समझता था। टूटी हुई वीणा की तरह उसके हृदय का एक-एक तार विकृत स्वर में झनझना उठा, उसका मस्तिष्क चक्कर खाने लगा। वह कोच पर से उठकर बिस्तरे पर जाकर लेट गया, आँखें मूँद लीं।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

मुंगेर की आबोहवा गुरुचरण के अकाल-जरा-जीर्ण और चिन्ता-शत-समाक्रान्त देह को अधिक से अधिक वर्ष भर टिका सकी। इसके बाद एक दिन वह दुख का बोझ नीचे पटक कर चले गये। सचमुच ही गिरीन्द्र ने उन्हें जीवन में सबसे बढ़कर प्यार किया था और अन्तिम क्षण तक वह उनकी परिचर्या में तत्पर रहा।

मरने से पहले गुरुचरण बाबू ने डबडबाई आँखों की छाया में गिरीन्द्र का हाथ अपने काँपते हाथ में लेकर कहा था—'गिरीन्द्र, मेरा यह अनुरोध है। इस परिवार को कभी अपने अवलम्ब से मुक्त न समझना। हमारा यह गम्भीर भ्रातृत्व शीघ्र से शीघ्र निकट आत्मीयता का रूप धारण करे। तुम्हारी और ललिता की जोड़ी मैं अपनी आँखों नहीं देख सका.....बीमारी के मारे समय ही नहीं उस पवित्र अवसर का आ सका किन्तु, बच्चा, अब तुम ऐसा करना कि परलोक से ही मैं यह शुभ दृश्य देख सकूँ।'

गिरीन्द्र ने हार्दिक रूप में गुरुचरण बाबू को उस समय आश्वासन दिया और वृद्ध के सूखे मुँह की फीकी मुसकान के साथ उस बात का उपसंहार हुआ था।

गुरुचरण के कलकत्तावाले मकान में जो किरायेदार रहता था उसी से भुवनेश्वरी को उनके देहान्त का समाचार प्राप्त हुआ।

उसके बाद इस मकान में भारी दुर्घटना हुई। नवीन राय की अचानक मृत्यु हो गई। भुवनेश्वरी शोक से व्याकुल होकर काशी चली गईं, घर का भार बड़ी बहू ने जिस किसी तरह सँभाल लिया था। जाते समय भुवनेश्वरी कह गई थीं—'अगले वर्ष शेखर के व्याह की बात ठीक हो जाने पर दो-चार दिन के लिए मैं आ जाऊँगी।'

व्याह की बात नवीन राय खुद ही ठीक कर गये थे। उनकी मृत्यु के कारण ही सम्बन्ध स्थगित हो गया था नहीं तो पहले ही व्याह हो चुका होता। कन्या पक्ष और विलम्ब नहीं चाहता। कल ही आकर वे लोग तिलक चढ़ा गये हैं। इसी मास में शादी होगी। आज शेखर माँ को लाने काशी जायगा। आलमारी से जब सामान निकालने गया तो बहुत दिन पर एकाएक उसे ललिता याद आई क्योंकि यह सब काम वही करती थी।

उन लोगों को कलकत्ता छोड़े तीन साल से ज्यादा हो गये। इस बीच में शेखर को उन लोगों का एक भी समाचार नहीं मिला है। यह कहिये कि उसने स्वयं ही मालूम करने की कोशिश नहीं की। ललिता के प्रति धीरे-धीरे उसके हृदय में एक प्रकार का घृणाभाव घनीभूत होता जा रहा था। किन्तु आज अकस्मात् उसके मन में आया—यदि किसी प्रकार ललिता का कोई हाल मालूम हो जाय, वह कैसे है। अवश्य वह कुशल से है क्योंकि गिरीन्द्र का साहचर्य मिला है। यह उसे मालूम है, तो भी वह सुन लेना चाहता है कि कब शादी हुई, कैसे उसका समय कटता है आदि।

गुरुचरण का मकान दो मास से खाली पड़ा है.....शेखर ने एक बार सोचा, चारुबाला के बाप से जाकर क्यों न पूछें क्योंकि गिरीन्द्र का पता वह अवश्य रखते हैं। क्षण भर के लिए सूटकेश को छोड़कर उसका ध्यान खिड़की से बाहर नील निर्मेघ आकाश की ओर गया, वह शून्य दृष्टि से उधर देखता रहा। इतने में पुरानी नौकरानी ने आकर कहा—"छोटे बाबू, काली की माँ ने एक बार आपको बुलाया है।"

शेखर ने उसकी ओर मुँह करके विस्मित भाव से कहा—'कौन काली की माँ?'

नौकरानी ने हाथ से गुरुचरण के मकान की तरफ़ इशारा कर दिया—'रात को ही, बाबू, वे लोग लौट आये हैं।'

'चल, आता हूँ'—शेखर नीचे उतरा।

उस समय दिन ढल रहा था। वह उनके आँगन में गया, जाते ही मर्म-भेदी क्रंदन ध्वनि उठी। उसने गुरुचरण को विच्छेदावेशधारिणी पत्नी को रोते

देखा और नीचे ज़मीन पर ही बैठ गया। धोती के खूँट से शेखर अपने आँसू पोछने लगा क्योंकि गुरुचरण के अतिरिक्त इस समय उसको अपने पिता भी याद आ रहे थे।

शाम हुई तो ललिता आकर दीप बाल गई, शेखर को उसने प्रणाम भी किया। कुछ देर की प्रतीक्षा के बाद वह उठकर चली गई। शेखर सत्रह वर्ष की एक परकीया से भला कैसे बात करता! पर स्त्री को देखना भी उचित नहीं। तथापि मन के चालाक चोर ने देखने में उसकी मदद की, वह जान सका कि ललिता और बड़ी हो गई है लेकिन देह की दुबली है।

रोदन-प्रतिरोदन के बाद काली की माँ ने कहा—'यह मकान बेचकर मैं मुंगेर फिर वापस जाना चाहती हूँ, लड़की के घर ही रहूँगी। यह घर और ज़मीन तुम्हारे पिता खरीदना चाहते थे। अभी उचित दाम पर यदि तुम्हीं लोग यह वस्तु ले लो तो यह घर की चीज़ मानो घर ही में रह जायगी। मुझको खेद नहीं होगा और जब कभी इधर आऊँगी तो दो-एक दिन इसमें रह भी सकूंगी।'

शेखर ने कहा—'माँ को कहूँगा, 'चाची हम यथासाध्य कोशिश करेंगे।'

'तुम्हारी शादी में बहना नहीं आयेंगी?'

शेखर ने कहा—'आज ही रात की गाड़ी से बनारस जा रहा हूँ, माँ को लाने।'

इसके बाद काली की माँ ने खोद-खोदकर शेखर से बहुत सी सारी बातें जान लीं—शादी कब हो रही है, कहाँ हो रही है, नक़द कितना मिलेगा, गहने कितने? नवीन राय कैसे मरे, बहिना ने क्या किया...आदि।

शेखर को जब इस चाची से अवकाश मिला तो आकाश में चाँदनी छिटक चुकी थी। इसी समय गिरीन्द्र ऊपर से उतरा और शायद अपनी बहन के आँगन की तरफ चला गया। गुरुचरण की स्त्री ने कहा—'मेरे दामाद के साथ बातचीत हुई है शेखरनाथ? ऐसा सुपात्र लड़का संसार भर में नहीं है।'

'हाँ, मुझे परिचय है, आपका कहना ठीक ही है'—शेखर ने कहा और चल दिया। परन्तु बैठक के किवाड़ के पास आकर वह एकाएक रुक गया, ललिता खड़ी थी।

उसने कहा—'माँ को लाने आज ही जा रहे हो?'

'हाँ'—शेखर ने कहा।

'माँ क्या बहुत विकल रहती हैं?'

'हाँ, पागल की तरह रहती थीं।'

'तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है?'

'ठीक है'—शेखर बाहर निकल गया। बाहर आकर लज्जा और घृणा से उसे रोमांच हो आया। ललिता के पास खड़ा होने से भी वह अपने को अपवित्र समझने लगा। घर आकर वह जैसे-तैसे सामान ठीक करने लगा, सब हो जाने पर सूटकेश में ताला लगा दिया। गाड़ी में अभी देर थी, इसीलिए वह ज़रा पलंग पर लेट गया। उसने कसम खाई—ललिता की विषमय स्मृतियों को हृदय से निकाल बाहर करूँगा। फिर वह नफ़रत की आग से दिल और दिमाग़ का कोना-कोना जलाने लगा। जलन की तड़प में वह ललिता को मन ही मन गालियाँ दे रहा था, उसने उसको कुलटा तक कह डाला, इसमें उसे कोई झिझक या दुविधा नहीं हुई। काली की माँ ने कहा था—बाबू, यह सुख की शादी तो थी नहीं, अन्त तक किसी की इच्छा नहीं थी, ललिता ने तो तुम लोगों को खबर करने के लिए कहा था। ललिता की यह शेखी! इतनी स्पर्द्धा! यह औद्धत्य! घृणा की आग के ऊपर शिखा सदृश उसकी यह स्पर्द्धा शेखर के अन्दर प्रज्वलित हो उठी।

बारहवां परिच्छेद

शेखर माँ को लेकर काशी से लौट आया, अभी भी व्याह के दश-बारह दिन बाक़ी थे।

तीन-चार दिन बाद एक दिन शेखर की माँ के पास बैठ कर ललिता एक डाला पर कुछ सजा कर रख रही थी। अनजान में किसी काम से शेखर वहाँ पहुँचा, ललिता पर नज़र पड़ते ही उसके पैर ठिठक गये। ललिता ज़रा और नतवदना होकर पूर्ववत् अपने काम में लग गई।

माँ ने पूछा—'क्या है शेखर ?'

'नहीं, अम्मा, कुछ नहीं'—शेखर जिस लिए आया था वह बात भूल गया और बाहर चला गया। ललिता का चेहरा वह नहीं देख सका था लेकिन उसके हाथों पर दृष्टि पड़ी थी, उनमें सिर्फ काँच की दो दो चूड़ियाँ भर पड़ी थीं, आभरण का नाम तक न था। शेखर भीतर ही भीतर व्यंग हँसी हँसा—वाह क्या खूब ! अच्छा स्वाँग बना रक्खा है ! गिरीन्द्र सम्पन्न व्यक्ति है, उसकी पत्नी के हाथ ऐसे आभरण-हीन हों, इस बात का कोई उचित कारण शेखर की समझ में नहीं आ रहा था।

उसी दिन की बात है, शाम को जल्दी जल्दी वह नीचे उतर रहा था और उन्हीं सीढ़ियों से ललिता ऊपर जा रही थी। एक ओर होकर खड़ी हो गई। शेखर जब पास आया तो संकोच तथा मृदुतापूर्वक बोली—'तुमसे कुछ कहना है।'

शेखर क्षण भर खड़ा हुआ और विस्मित होकर बोला—'किससे ?'

'हाँ, तुम्ही से'—ललिता ने उसी मृदुता से कहा।

'मेरे साथ भला तुम्हारी और क्या बात हो सकती है !'—शेखर शीघ्रता से नीचे उतर गया। ललिता वहीं खड़ी रही, स्तब्ध ! श्वास की गति तीव्र हो गई थी।

दूसरे दिन, सवेरे ही, दरवाज़े पर शेखर दैनिक समाचार पढ़ रहा था। अत्यंत विस्मय से उसने देखा, गिरीन्द्र आ रहा है। नमस्कार करके गिरीन्द्र एक तरफ़ चौकी पर बैठ गया। शेखर ने उत्तर में नमस्कार किया और अखबार पढ़ना छोड़ कर उसकी तरफ आकर्षित हुआ। दोनों में परिचय था परन्तु आँखों का ही, बातचीत कभी नहीं हुई थी। इसके लिये कभी उन्होंने अपना आग्रह नहीं प्रकट किया था।

गिरीन्द्र ने बिना किसी भूमिका के काम की बात शुरू कर दी—'मेरी सासजी ने जो बात आप से कही थी उसी के सम्बन्ध में आप को कष्ट देने आया हूँ। आप लोगों के हाथ ही मकान बेचने का पक्का इरादा उनका है, लेकिन वह काम ज़ल्द करना चाहती हैं; इसी महीने की आख़ीर में मुंगेर जाने का उनका विचार है।'

गिरीन्द्र को देखते ही शेखर के अंदर तूफ़ान उठा। उसे गिरीन्द्र की एक भी बात अच्छी न लगी। तनी हुई आवाज़ में बोला—'आपका कहना है तो ठीक लेकिन मैं कुछ नहीं कह सकता, भैया से कहिए, वही मालिक हैं।'

गिरीन्द्र ने हँसकर कहा—'सो हम भी जानते हैं, परन्तु यह बात आप ही उनसे कहते तो अच्छा था।'

शेखर ने उलटकर जवाब दिया—'आप स्वयं भी तो कह सकते हैं क्योंकि अभी आप ही उन लोगों के अभिभावक हैं।'

'आवश्यकता पड़ने पर मैं स्वयं भी आपके भाई से कह सकता हूँ परन्तु कल ललिता बहन कहती थी कि आप यदि थोड़ा ध्यान दें तो यह काम आसानी से हो जायगा।'

मोटी तकिया के सहारे बैठा शेखर बातें कर रहा था, अब वह मेरुदंड को सीधा करके बैठ गया—'कल कौन कहता था?'

गिरीन्द्र ने कहा—'ललिता दीदी'.....

शेखर आश्चर्य में डूब गया। बाद में गिरीन्द्र ने क्या कुछ कहा, एक अक्षर भी उसे सुनाई नहीं दिया। कुछ क्षण विह्वलतापूर्वक गिरीन्द्र की ओर

देखता रह गया वह ! बाद में बोला—'एक बात पूछता हूँ, माफ करें गिरीन्द्र बाबू, ललिता के साथ क्या शादी आपकी नहीं हुई ?'

गिरीन्द्र ऊपरी दाँतों से जीभ को दबाता हुआ बोला—'जी नहीं, मेरी तो काली के साथ·····और उस परिवार के एक एक व्यक्ति को तो आप जानते हैं।'

'किन्तु बात तो कुछ और ही किस्म की चल रही थी'—शेखर ने कहा।

गिरीन्द्र को ललिता से सारी बात मालूम हो चुकी थी। यह बोला—'सो सब ठीक, गुरुचरण बाबू मरते समय मुझसे अनुरोध कर गये थे, किसी और जगह ब्याह न करना। मैंने उन्हें इस बात का आश्वासन दिया था। एक दिन उनकी मृत्यु के पश्चात् ललिता दीदी ने मुझे समझा बुझा कर कहा कि उनका विवाह हो चुका है और पति महाशय जीवित हैं, अवश्य ही इस बात का पता किसी को नहीं था और दूसरा आदमी शायद ही उनकी इस बात पर विश्वास करता; परन्तु मैंने आज तक, शेखर बाबू, उन पर कभी अविश्वास नहीं किया। दूसरी बात यह थी कि एक बार विवाह हो जाने पर क्या स्त्रियों का दूसरा पति हो सकता है !'

शेखर की दोनों आँखें छलछला आईं, गिरीन्द्र के सामने ही उसके आँसू टप टप करके गिरने लगे। शेखर को आज इतना ख्याल नहीं रहा कि एक मर्द का इस तरह दूसरे मर्द के सामने रोना लज्जा का विषय है।

गिरीन्द्र मूक एवं निस्तब्ध होकर उसकी तरफ देखता रहा। उसे पहले भी सन्देह था परन्तु आज वह ललिता के पति को वास्तव में पहचान गया। शेखर ने आँखें पोछते हुए कहा—'पर आप ललिता को प्यार जो करते हैं !'

किसी अस्पष्ट पीड़ा की परछाईं से गिरीन्द्र का चेहरा काला पड़ गया लेकिन क्षण भर बाद ही वह मुसकुराने लगा, फिर मृदु स्वर में कहने लगा—'आपके इस प्रश्न का, शेखर बाबू, उत्तर देना अनावश्यक है। प्यार कितना ही क्यों न हो लेकिन जान-बूझकर कोई किसी की परित्यक्ता स्त्री से विवाह नहीं करता। अस्तु, गुरुजनों के सम्बन्ध में इस प्रकार की और बातें करना मैं पसन्द नहीं करता।'

गिरीन्द्र उठ खड़ा हुआ और नमस्कार करके बोला—'अभी जाता हूँ, फिर किसी समय आऊँगा'—इतना कह कर स्मितमुख गिरीन्द्र बाहर चला गया।

गिरीन्द्र के प्रति शेखर का विद्वेषभाव बहुत ही प्रबल रहा है, इधर कुछ दिनों से वह विद्वेष महा घृणा में परिवर्तित हो गया था परन्तु आज जब गिरीन्द्र चला गया तब शेखर उठा और मस्तक को अत्यन्त नवाकर इस ब्रह्मसमाजी तरुण के उद्देश्य से धरती को कई बार प्रणाम किया। शेखर ने अपने जीवन में आज प्रथम बार यह देख पाया कि मनुष्य चुपचाप, बिना विज्ञापन के कितना महान् त्याग कर सकता है और हँसते-हँसते कठोर से कठोर प्रतिज्ञा का कैसे पालन करता है!

उसी दिन दो-ढाई बजे के करीब सुवनेश्वरी घर के अन्दर मेज़ पर बैठी थीं और नये कपड़ों को तह करके एक ओर रखती जा रही थीं। इस काम में ललिता भी उनकी मदद कर रही थी। शेखर भी अन्दर आया और माँ की चारपाई पर जा बैठा। आज वह ललिता को देख कर भागा नहीं, उसकी आँखों से आज ज़रा भी घृणा नहीं प्रकट हो रही थी।

माँ ने कहा—'क्या है शेखर!'

शेखर ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, उन लोगों का काम केवल देखता रहा। कुछ देर बाद बोल उठा—'क्या कर रही हो माँ?'

सुवनेश्वरी ने कहा—'किसको कैसा कपड़ा देना होगा और क्या देना होगा, हिसाब लगाकर देखती हूँ; शायद कुछ और खरीदना पड़े, है न बेटी!'

ललिता ने गर्दन हिलाकर समर्थन किया।

शेखर ने हँसते-हँसते कहा—'और, यदि मैं शादी न करूँ माँ?'

सुवनेश्वरी हँसी—'सो क्यों न होगा! यही सच तो तुममें गुण है!'

शेखर ने भी हसकर कहा—'माँ, मालूम तो वैसा ही कुछ पड़ता है।'

सुवनेश्वरी ने गम्भीर होकर कहा—'यह कैसी बात तू कर रहा है शेखर! ऐसे अशुभ शब्द तो होठ पर लाने न चाहिए।'

शेखर बोला—'इतने दिन तक तो मैं चुप रहा लेकिन अब चुप रहने से महापाप होगा।'

भुवनेश्वरी की समझ में कुछ आ नहीं रहा था, केवल शंकित दृष्टि से वह शेखर के चेहरे को देख रही थीं। लड़के ने कहा—'माँ, तुमने इस उपद्रवी लड़के के बहुत सारे अपराध क्षमा किये हैं, यह अपराध भी क्षमा करो माँ! मैं यह शादी न कर सकूँगा।'

बेटे की बात और मुखमुद्रा देखकर भुवनेश्वरी भीतर भीतर बहुत ही व्याकुल हो गईं किन्तु ऊपर से कहा—'अच्छा, भाई, न सही न करना। मुझे तंग मतकर, जा अभी बाहर जा; बहुत से काम करने को पड़े हैं।'

शेखर ने हँसने का प्रयत्न किया किन्तु असफल रहा। सूखे स्वर में उसने कहा—'नहीं माँ, सच कहता हूँ तुमसे, यह शादी नहीं हो सकती।'

'क्यों शेखर, मेरे साथ खिलवाड़ करता है?'

'ना, खिलवाड़ नहीं, तभी तो कहता हूँ माँ!'

इस बार भुवनेश्वरी सचमुच डर गईं, क्रोध का अभिनय करके बोलीं—'आखिर क्या बात है शेखर, कुछ कहेगा भी तो?'

शेखर ने धीमी आवाज़ में कहा—'आज न सही, कभी और सुन लेना।'

'नहीं कहेगा न?'—भुवनेश्वरी ने कपड़ों की ढेर को एक तरफ ढकेल दिया—'तो आज ही चल पहुँचा दे मुझे काशी; ऐसे संसार में रह कर मैं क्या करूँगी?'

शेखर मुँह लटका कर बैठा रहा। भुवनेश्वरी ने उद्विग्न भाव से कहा—'ललिता भी मेरे साथ जाना चाहती है, इसके जीवन की भी कोई न कोई व्यवस्था करनी है।'

इस बार शेखर मुँह उठाकर हँसा—'माँ तुम उसे साथ ले जाओगी और व्यवस्था इसकी किसके साथ क्या करोगी? तुम्हारी आज्ञा से बढ़कर उसके लिए और है ही क्या?'

बेटे का मुसकुराता चेहरा देखकर उन्हें मानों कुछ आशा हुई हो, ललिता के तरफ एक बार देखकर वह बोलीं—'सुना बेटी, यह कहता क्या है ? जहाँ और जब चाहूँ मैं तुम्हें ले जा सकती हूँ ! और, इसकी मामी से सलाह नहीं लेना होगा ?'

ललिता ने उत्तर में कुछ नहीं कहा। शेखर का आज बातचीत करने का जो रवैया था उससे वह बहुत ही शरमिन्दा हो रही थी।

शेखर बोला—'काली की माँ को बतलाना है बतलाओ जाकर, किन्तु बोलोगी जो तुम होगा वही। यह मैं भी जानता हूँ, जिसको साथ ले जाना चाहती हो वह भी जानती है; वही है तुम्हारी पुत्रबधू !'—शेखर नतमुख हो गया।

भुवनेश्वरी को बहुत विस्मय हुआ, माँ के समक्ष सन्तान ऐसी बातें करे ! शेखर की ओर देखकर उन्होंने कहा—'क्या कहा ? ललिता कौन होती है मेरी ?'

शेखर शिर नहीं उठा सका पर बोला—'यही तो कहा माँ, आज नहीं, चार साल से अधिक ही हुआ, उस दिन से तू ही उसकी यथार्थ माता बन है। मैं ज्यादा कह नहीं सकता, उसी से पूछ न तू, वह सब बतला देगी'... ललिता ने गले में आँचल लपेट कर माँ के पैर छूने चाहे तब तक शेखर भी आकर उसके पास खड़ा हो गया; फिर दोनों ने साथ ही माँ को प्रणाम किया। शेखर चुपचाप बाहर चला गया।

भुवनेश्वरी की आँखें हर्षातिरेक से डबडबा आईं, कुछ देर के बाद आँसू झरने लगे। वे सचमुच ललिता को दिल से चाहती थीं। सन्दूक खोलकर वह अपना एक एक गहना उसे पहनाने लगीं, धीरे-धीरे सारी बात भी उन्होंने मालूम कर ली। अन्त में कहा—'तभी तो, गिरीन्द्र का व्याह काली के साथ हुआ है ?'

'हाँ, अम्मा'—ललिता ने कहा—'गिरीन्द्र बाबू जैसा नररत्न संसार में दूसरा कोई नहीं होगा। मैंने जब अपनी विषम स्थिति उनके समक्ष रखी—मेरा

विवाह हो गया है, पति मुझे ग्रहण करें चाहे न करें, उनकी इच्छा, किन्तु वह विद्यमान तो हैं; मेरी इन बातों का गिरीन्द्र बाबू ने बिलकुल विश्वास कर लिया।'

भुवनेश्वरी ललिता के शिर पर अपना हाथ फेरती हुई बोलीं—'हाँ हाँ, क्यों नहीं बेटी! आशीष देती हूँ, वह जन्म-जन्म दीर्घायु हो। तू तनिक यहीं बैठ बिटिया, मैं ज़रा अविनाश को खबर कर आती हूँ कि लड़की अदल-बदल हो गई है'.....वह हँसती-हँसती अविनाश के घर की ओर चली गई।